जैन भारती

अप्रैल 2014 • वर्ष 62 • अंक 4 • वार्षिक ₹ 200

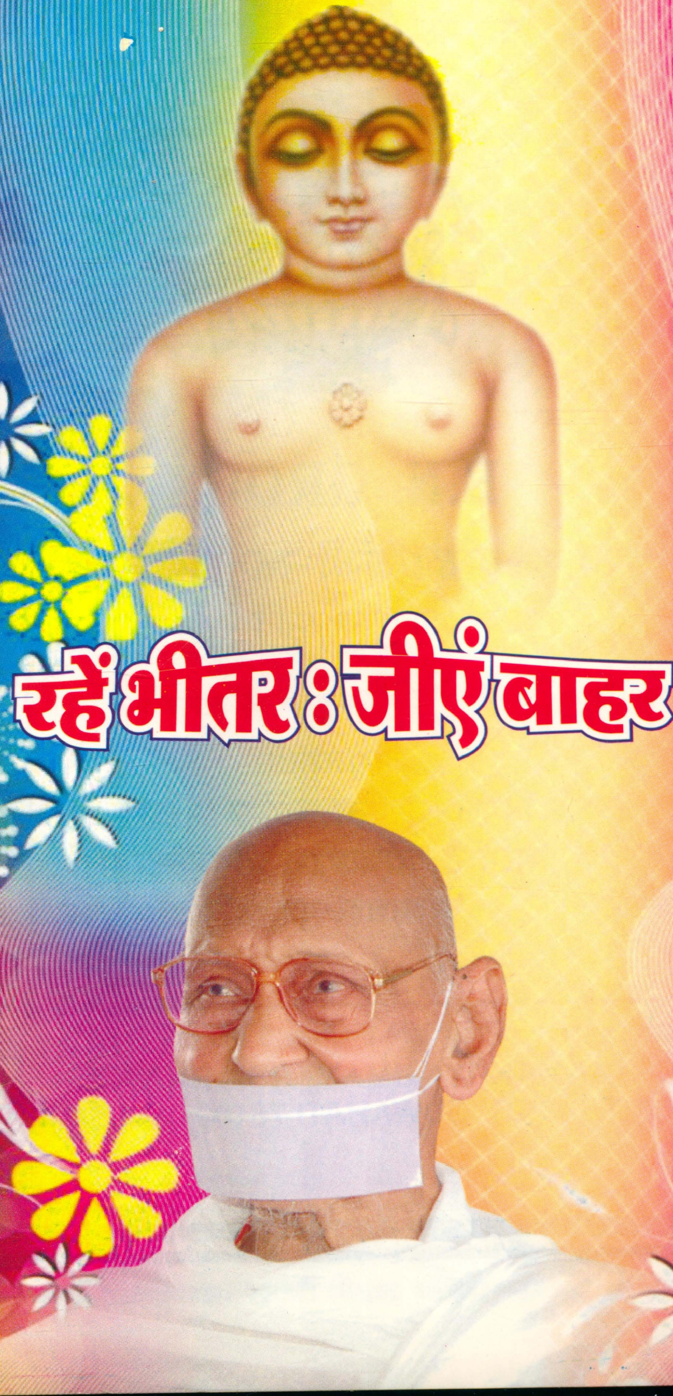

रहें भीतर : जीएं बाहर

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

B.N. GROUP

स्व. श्री बच्छराजजी-रतनीदेवी नाहटा

की पुण्य स्मृति में

शासनसेवी
बिमल-सुशीला, संदीप-मीता
सलोनी, प्रियंक, सांची नाहटा
सरदारशहर-गुवाहाटी

KAMAKHYA UMANANDA BHAWAN
A.T. ROAD, GUWAHATI 781001 (ASSAM)

जैन भारती

वर्ष 61 • अप्रैल 2014 • अंक 4

सम्पादक
डॉ. शान्ता जैन

आवरण
गौरीशंकर

अनुक्रम

1.	संपादकीय		5
2.	ऋषभ का अवतरण	–आचार्य महाप्रज्ञ	7
3.	धृति धारण करो	–आचार्य महाश्रमण	11
4.	जन्मदिन एक समूची सृष्टि का	–आचार्य तुलसी	15
5.	वोट किसे दें और कैसे दें?	–आचार्य तुलसी	18
6.	समय के साथ बदलना सीखें	–आचार्य तुलसी	21
7.	तृष्णा का अंत कहां?	–साध्वी डॉ. उज्ज्वलयशा	24
8.	आधुनिक संदर्भ में भगवान महावीर	–महेश नाहटा	27
9.	निमित्त-उपादान : चिंतन के कुछ बिंदु	–डॉ. अनेकान्त कुमार जैन	30
10.	पुण्य तिथि पर श्रद्धांजलि	संकलित	33
11.	जीवन के कुछ उल्लेखनीय तथ्य	संकलित	37
12.	कब जागेगा देश का युवा?	–डॉ. रामभरोसे	41
13.	मां का कर्ज : बेटे का फर्ज	–हीरालाल मालू	44
14.	इधर जूं तो उधर आतंकी	–छत्रसिंह बच्छावत	47
15.	150वें मर्यादा महोत्सव पर	–रिपोर्ट	49
16.	मोक्ष तत्त्व : एक विमर्श	–मुनि मदन कुमार	54
17.	प्रार्थना के द्वारा साधना		57

संपादकीय सम्पर्क सूत्र : डॉ. शान्ता जैन, जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनूं, 341306
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन-महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- • त्रैवार्षिक 500/- • दसवर्षीय 1500/- रुपए
* Contact us at: jainbharatitms@gmail.com

जगद्वन्द्यः स्वामी विशद चरितो नाम तुलसी

आचार्य महाप्रज्ञ की अनुभूतियां

भगवान महावीर का यह वचन दिशादर्शक और उत्प्रेरक है–असंखयं जीविय मा पमायए–जीवन का संस्कार नहीं होता, इसलिए प्रमाद मत करो, जागरूक रहो। प्रतिक्षण जागरूकता का यह मंत्र जीवन को सदा सुखी बनाए रख सकता है।

सत्य की दुहाई देने वाले बहुत सारे लोग इतने आग्रही बन जाते हैं कि उनका सत्य भी असत्य बन जाता है। अनाग्रह, ऋजुता, तटस्थता, पवित्रता आदि की साधना के बिना क्या कोई सत्य की खोज का अधिकारी हो सकता है?

वह व्यवस्था जिसमें विकास की संभावना न हो, कोरा नियंत्रण बन जाती है। वह विकास जिसकी पृष्ठभूमि में अनुशासन न हो, विश्रृंखलता को जन्म देता है। वही संघ शक्तिशाली बनता है जिसमें व्यवस्था और विकास दोनों समान रूप से मान्य होते हैं।

वही ज्ञान उपयोगी हो सकता है जो अहंकार न बढ़ाए, जो बंधन न बने, जिससे स्व की विस्मृति न हो, जो संस्कार का शोधन करे तथा मानसिक शांति की ओर ले जाए।

मन दुर्बल, तो निमित्त हावी हो जाते है। मन प्रबल, तो निमित्त गौण हो जाते हैं। हम निमित्तों से बचने का प्रयत्न अवश्य करें किंतु अंतिम सचाई है कि हम मन को बलवान बनाने की साधना करें।

छोटा व्यक्ति कभी बड़ा काम नहीं कर सकता। बड़ा काम वही कर सकता है जिसने महानता का वरण किया है। विशाल चिंतन, व्यापक दृष्टिकोण और आत्मतुला की भावना जिसके सहचारी हैं सचमुच वह बड़ा काम करने का अधिकारी है।

जीवन यात्रा के लिए अर्जन जरूरी है और स्वस्थ जीवन के लिए विसर्जन जरूरी है। जो इस सचाई को नहीं जानता, केवल अर्जन करता है, विसर्जन करने में सकुचाता है, वह स्वस्थ जीवन नहीं जी सकता।

जिसका मन संदेह से भरा रहता है, संकल्प शक्ति कमजोर है, वह अपनी चाह को सफलता के द्वार तक नहीं पहुंचा सकता और वह भी नहीं ले जा सकता, जिसमें एकाग्रता की शक्ति का विकास नहीं है।

अपने आपको अनुपयोगी न बनाएं। दूसरों को लगता रहे कि इसकी उपयोगिता है, सार्थकता है। हम वह पोस्ट–कार्ड न बनें, जो लिखने के बाद कोई काम का नहीं रहे। नित नया पर्याय हमारा बनता रहे।

महाप्रज्ञ नाम नहीं, साधना है

आचार्य महाप्रज्ञ का जन्म और जीवन दोनों विशिष्ट अर्हताओं से जुड़ा दर्शन है जिसे जब पढ़ेंगे, देखेंगे, कहेंगे, लिखेंगे और समझेंगे तब यह प्रशस्ति नहीं, प्रेरणा और पूजा का मुकाम बनेगा। क्योंकि महाप्रज्ञ किसी व्यक्ति का नाम नहीं, पद नहीं, उपाधि नहीं और अलंकरण भी नहीं।

यह तो विनय और विवेक की समन्विति का आदर्श है। श्रद्धा और समर्पण की संस्कृति है। प्रज्ञा और पुरुषार्थ की प्रयोगशाला है। आशीष और अनुग्रह की फलश्रुति है। व्यक्तित्व निर्माण की रचनात्मक शैली है और अनुभूत सत्य की स्वस्थ प्रस्तुति है।

यह वह सफर है, जिधर से भी गुजरता है उजाले बांटता हुआ आगे बढ़ता है। कहा जा संकता है कि निर्माण की प्रक्रिया में इकाई का अस्तित्व जन्म से ही इनके भीतर था, शून्य जुड़ते गए और संख्या की समृद्धि अक्षय बनती गई।

बदलाव आपकी साधना का पहला संकल्प बना। बचपन में जमीन पर पैर लड़खड़ाए तो खतरों से बचने के लिए पैर जमा-जमाकर चलना सीखा। जनता के बीच तर्क और ज्ञान की भाषा में विचारों की प्रस्तुति दी तो लोगों की समझ में भी कुछ नहीं आया। तत्काल दृष्टांतों की भाषा में बोले, आगमिक सत्यों को सहज बोधगम्य बना दिया। सिद्धांत, शास्त्र और उपदेश जीवन में रूपांतरण नहीं ला सके तो जनता को साधना की प्रायोगिक भूमिका दी कि व्यक्ति स्वयं सत्य खोजे। स्वयं स्वयं को बदले।

महाप्रज्ञ की निजी पहचान बन गई–वे भीड़ में भी सदा अकेले होते, ग्रंथों से घिरे रहकर भी निर्ग्रंथ से दीखते और लाखों लोगों के अपनत्व से जुड़कर भी निर्बंधता को जी लेते।

उनके निर्माण और अभ्युदय का राज भी यही है कि गुरु तुलसी का वरदस्त पाकर आपने कभी चिंता की चादर ओढ़ी नहीं। तनावों का बोझ ढोया नहीं। शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक श्रम ने कभी थकाया नहीं। आस-पास के कोलाहल ने कलम और चिंतन की गत्यात्मकता को रोका नहीं। कार्यबहुलता ने कभी कार्य-व्यस्तता का बहाना बनाया नहीं और तर्कबुद्धि कभी सत्य की तलाश

में बाधक बनी नहीं। चिंतन की ऊंचाई और ज्ञान की गहराई सहज प्राप्त होती गई, इसीलिए कर्तव्य का कद ऊंचा उठकर भी कृतित्व के अहं को छू पाया नहीं।

सदियों बाद जमाने ने गुरु-शिष्य की ऐसी युगल जोड़ी देखी होगी जहां गुरु की वत्सलता ने शिष्य को अपने समकक्ष ला खड़ा किया और शिष्य की समर्पित चेतना ने 'स्व' को गुरु-चरणों में सौंप ज्ञान, दर्शन और चारित्र की साधना में पूर्णता तक पहुंचने का हस्ताक्षर पा लिया।

सच तो यह है कि गुरुदेव ने जब से अपने हाथों संत नत्थू के भाग्य और पुरुषार्थ का इतिवृत्त रचना शुरू किया, सृजन का वह हर पल महाप्रज्ञ के नए जन्म का शुभ मुहूर्त बन गया। बदलते रूप, नाम, परिवेश, संस्कार, संकल्प, साधना और विकास के गुणनफल न केवल नत्थू को महाप्रज्ञ बना गए बल्कि महाप्रज्ञ की महाप्रज्ञता ने तेरापंथ की संघीय चेतना को भी प्राणवान बना दिया।

आपका अतीत सृजनशील सफर का साक्षी है। इसके हर पड़ाव पर शिशु-सी सहजता, युवा-सी तेजस्विता, प्रौढ़-सी विवेकशीलता और वृद्ध-सी अनुभवप्रवणता के पदचिह्न थे जो हमारे लिए सही दिशा में मील के पत्थर बनते हैं। आप वर्तमान तेजस्विता और तपस्विता की ऊंची मीनार थे जिसकी बुनियाद में जीए गए अनुभूत सत्यों का इतिहास संकलित है। जो साक्षी है सतत अध्यवसाय और पुरुषार्थ की कर्मचेतना का, परिणाम है तर्क और बुद्धि की समन्वयात्मक ज्ञान चेतना का और उदाहरण है निष्ठा तथा निष्काम भाव चेतना का।

आपका मानवता के अभ्युदय का उजला भविष्य है। इससे जुड़ी है मानवीय एकता, सार्वभौम अहिंसा, सर्वधर्म समन्वय, सापेक्ष चिंतनशीलता के विकास की नई संभावनाएं।

महाप्रज्ञ का संपूर्ण जीवन मानवीय-मूल्यों का सुरक्षा प्रहरी है, इसलिए आप सबके प्रणम्य हैं। आपके विचार जीवन का दर्शन है। प्रवचन भीतरी बदलाव की प्रेरणा है। संवाद जीने की सही सीख है।

आपकी प्रेरणा में सबके साथ सह-अस्तित्व का भाव है। निष्पक्षता में सबके प्रति गहरा विश्वास है। न्याय प्रवणता में सूक्ष्म अन्वेषणा के साथ व्यक्ति की गलतियों के परिष्कार की मुख्य भूमिका है। सापेक्ष चिंतन में अहं, आग्रह, विरोध और विवाद का अभाव है। विकास की यात्रा में सबके अभ्युदय की अभीप्सा है।

व्यवहार और निश्चय की समन्विति का एक नाम है महाप्रज्ञ, जिनका अनुभूत सत्य है कि *'रहें भीतर, जीएं बाहर'*। शिष्य और गुरु की दोनों भूमिकाओं को जीते हुए भी संतता जिनकी पहली पहचान है, और इसी संतता की पवित्रता को आज सारा जहां नमन करता है।

मुमुक्षु शान्ता जैन

ऋषभ का अवतरण

आचार्य महाप्रज्ञ

यौगलिक युग की स्थितियों में उत्तरोत्तर परिवर्तन हो रहा था। प्रसेनजित का समय बीता। छठे कुलकर मरुदेव का समय आया। समय का एक प्रवाह है और इस प्रवाह में लोग आते हैं, चले जाते हैं। न कभी समय रुकता और न कभी समय से प्रभावित होने वाली गति रुकती। गति अविच्छिन्न थी। छठे कुलकर का शासन-काल लंबे समय तक चला, उसकी अवधि भी पूरी हो गई। सातवां कुलकर बना नाभि। पत्नी का नाम था मरुदेवा। इनका शासनकाल चल रहा था।

युग आया अब नाभि युगल का, मरुदेवा पत्नी का नाम।
युगल व्यवस्था का आलेखन, मांग रहा है पूर्ण विराम।।

एक दिन रात्रि का समय। युगल सो रहा था। मकान था ही नहीं। कल्पवृक्ष की छत के नीचे निद्राधीन था। मध्य रात्रि बीत गई। उस समय एक घटना घटित हुई, जो अब तक नहीं हुई थी। मरुदेवा जाग गई। नाभि कुलकर भी जाग गए। मरुदेवा उनके सामने आकर खड़ी हो गई। मरुदेवा का चेहरा बहुत पुलकित था। ऐसा लग रहा था कि आनंद शरीर में समा नहीं रहा है। बाहर उछलने को तैयार है। नाभि ने सोचा–'आज इतना आनंद कैसे? सदा खुश तो रहती है, पर आज कुछ अधिक आनंद दिखाई दे रहा है। आंखें बता रही है, चेहरा बता रहा है। आंखें बहुत सारी बातें बता देती हैं। आंखों को चर भी कहा गया है, गमक भी कहा गया है।

भय चिंता आलस अमन, सुख-दुःख हेत-कुहेत।
मन महीप के आचरण, दृग् दीवान कहि देत।।

आंखें मन रूपी राजा के दीवान का काम करती है। जैसे मंत्री सूचक होता है वैसे ही आंखें भी सूचक हैं। मन के जितने आचरण हैं, आंख बता देगी। भय, चिंता, आलस्य, विमनस्कता, सुख-दुःख आदि सारे भाव आंख के द्वारा अभिव्यक्त हो जाते हैं।

मरुदेवा की आंखें इतनी पुलकित थी, आनंद जैसे टपक रहा था। नाभि ने देखा–'आज कोई नई बात है। साधारण घटना तो नहीं है। कुछ नया हुआ है। इतनी खुशी अकारण नहीं आ सकती। सामान्य स्थिति तो अहेतुक हो सकती है पर कोई विशेष घटना होती है तो वह सहेतुक होती है। उसके पीछे कोई न कोई कारण होता है। इसका कारण क्या है?

नाभि ने कहा–'बोलो, आज इतनी खुश कैसे? बहुत प्रसन्न कैसे? मैंने सदा तुमको प्रातःकाल देखा है पर इतनी प्रसन्नता कभी नहीं देखी। इसका कारण क्या है?'

बोला क्यों आई हो इस क्षण, हर्ष तरंगित कण कण में।
कल्पवृक्ष क्या उग आया है, जीवन के नव प्रांगण में?

मरुदेवा बोली–'पता नहीं आज क्या हुआ? मैं रात को सो रही थी और सोते समय मेरे सामने एक के बाद एक दृश्य आता चला गया। ऐसी चीजें आती चली गईं जिनके बारे में मैं सोचती रही। मैंने जो कुछ देखा, वह अनुभव का विषय है। अनुभव को मैं कैसे व्यक्त करूं? ऐसे क्षण जीवन में कभी-कभी आते हैं।

बोली मरुदेवा हां, हां, हां, मैंने अचरज देखा है।
स्वामिन्! मेरी मनस-भित्ति पर, स्वप्न बिंब का लेखा है।।

पता नहीं क्यों आज अहेतुक, हर्ष वीचि उत्ताल हुई?
मौन समंदर गगनचुंबिनी, लहरी ज्यों वाचाल हुई।।

अनुभव को उपलब्ध न वाणी, वाणी अनुभव शून्य सदा।
कैसे व्यक्त करूं अनुभव को, यह क्षण आता यदा कदा।।

भगवती सूत्र में बतलाया गया है–'न तो गाढ़ नींद में सपना आता है और न जागते हुए सपना आता है। बीच की नींद होती है, उस समय सपने आते हैं।'

मरुदेवा ने कहा–'मैं न जागृत थी, न गहरी नींद में थी। अर्ध जागृत अर्ध निद्रित अवस्था में थी। आंखें बंद थी। उस समय एक वृषभ आकर मेरे सामने खड़ा हुआ। बड़ा पुष्ट स्कंध था उसका। मैंने देखा, सोचा–'इतना बलिष्ठ और मनोहर बैल कहां से आया? मैं बैल को देखती रही।

कुछ क्षण बीते। बैल चला गया। दूसरे ही क्षण हाथी आ गया। सफेद हाथी, उसके चार दांत थे। चार दांत वाले हाथी कम मिलते हैं। जो इन्द्र का हाथी होता है वह चार दांत का होता है। वह हाथी आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। मैं उसके बारे में क्या बताऊं? वह इतना उन्नत, इतना सफेद, इतना मोहक था। मैंने सोचा–'आज बात क्या है? पहले तो बैल आया और अब हाथी आ गया। थोड़ी देर हाथी खड़ा रहा। मैं हाथी को निहारती रही। बड़ा अच्छा लग रहा था। इतने में हाथी जाने लगा। हाथी के जाते ही मेरे सामने शेर आकर खड़ा हो गया। वह शेर बड़ा शक्तिशाली, पराक्रमशाली था। जिसकी अयाल झूल रही है, ऐसा केशरी मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। बहुत विशाल, लंबा और चौड़ा। आदमी की ऊंचाई तो सामान्यतः पांच-छह फुट होती है, सात फुट का तो कोई-कोई होता है, आठ का तो बहुत विरल होता है। किंतु शेर, बाघ की लंबाई बहुत होती है। समाचार पत्र में पढ़ा–'रणथंभौर जंगल में एक बाघ लाया गया, उसकी लंबाई ग्यारह फुट थी। मरुदेवा ने कहा–'ऐसा शक्तिशाली सिंह मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मैं उसको देखकर मुग्ध हो गयी।

शेर के जाने के बाद मेरे सामने लक्ष्मी देवी आकर खड़ी हो गई। 'लक्ष्मी' नाम तो शायद नहीं जानती थी। शेर का नाम तो जानती थी। शेर होते थे, हाथी भी होता था, बैल भी होते थे। उनको तो वह जानती थी, पर लक्ष्मी देवी को नहीं जानती थी। मरुदेवा ने कहा–'एक कोई स्त्री आकर खड़ी हो गई। जितनी सुंदर, उतनी ही आकर्षक। वरदान देने की मुद्रा में वह देवी आकर खड़ी हो गई। बड़ी लुभावनी थी, मनमोहक थी। उसको भी मैं देखती रही। किंतु स्वामी! हुआ ऐसा कि कोई भी दृश्य टिका नहीं, आया, थोड़ी देर ठहरा और चला गया। देवी भी चली गई।

पांचवां दृश्य। दो मालाएं मेरे सामने आ गईं। फूलों की दो माला। उनमें सुगंध फूट रही थी। मैं मन ही मन सोच रही थी कि आज क्या हो रहा है? माला गई और चंद्रमा मेरे सामने आ गया।

स्वामी ! आकाश में जो चंद्रमा है, वह मेरे पास आ गया। चंद्रमा की ज्योत्स्ना, शीतल रश्मियां चारों तरफ फैल गई। बड़ा आश्चर्य हो रहा था। मैंने चंद्रमा को अच्छी तरह निहारा किंतु वह भी ठहरा नहीं।

'सातवां दृश्य। सूरज आया और सूर्य की किरणें चारों दिशाओं में फैल गई। आठवां दृश्य। एक महाध्वज आकाश में लहराने लगा। नौवां दृश्य। एक पूर्ण कलश मेरे सामने आया। दसवां दृश्य। मैंने एक पद्माकर देखा। ग्यारहवां दृश्य। एक समुद्र मेरे सामने आया। उसने कहा–'मेरा नाम क्षीरसिंधु है। मेरा पानी दूध से मीठा है। मन में तो आया, चख लूं, पर चख नहीं पायी। वह आया और चला गया। बारहवां दृश्य। एक भव्य विमान आकर खड़ा हो गया। तेरहवां दृश्य। एक रत्नों का पुंज आया। वह रत्नपुंज मेरी आंखों को तृप्त कर चला गया। चौदहवां दृश्य। निर्धूम अग्नि का दर्शन।

अचल धरातल अचल गगनतल,
अचल पवन में स्पंद हुआ।
प्रकृति-काव्य के महाकुंज में,
प्रस्फुट सस्वर छंद हुआ।।
शांत निशा क्षण, शांत मनःस्थिति,
दिशा-वलय निःशब्द हुआ।
आधी निद्रा आधी जागृति,
स्वप्नलोक आरब्ध हुआ।।

कल्पवृक्ष की छत के नीचे,
युगल सुप्त था स्वस्थमना।
पश्चिम रजनी में मरुदेवा,
का अंतर्मन मुदित बना।।
पीन स्कंध वृषभ का दर्शन,
स्वीकृत भार निबाहेगा।
हिम पर्वत उत्तुंग शिखर पर,
गज गौरव बन जाएगा।।
प्रबल पराक्रम विक्रमशाली,
सिंह स्वर्ग से उतर रहा।
पद्मवासिनी लक्ष्मी का,
दर्शन आकर्षण बना रहा।।
सुरभि-सुमन से गुंफित माला,
आलंबन बनने आई।
अमल धवल ज्योत्स्ना से द्योतित,
चंद्रकांति अति लहराई।।
रवि ने रुचि का जाल बिछाकर,
सघन तमस को ध्वस्त किया।
लहराते ध्वज के अंचल ने,
भावी का संकेत दिया।।
परिमल रसमय शीतल जलभृत,
पूर्णकलश यह अभिनव है।
पद्माकर के मधु पराग पर,
मधुकर का गुंजारव है।।
क्षीरसिंधु की दुग्ध-ऊर्मि का,
नृत्य अबोला संस्तव है।
आभा से आभासित उज्ज्वल,
सुर विमान का वैभव है।।
तारागण सम अमल प्रभाकुल,
रत्नपुंज की दिव्य छटा।
वर वर्चस् निर्धूम अग्नि का,
दसों दिशाओं में प्रगटा।।
मुदित दिशाएं प्रमुदित दिग्गज,
मोद मूर्त बन छलक उठा।
मरुदेवा को नाभिराज ने,
देखा सहसा पलक उठा।।

मरुदेवा ने कहा–'स्वामिन् ! आप पूछ रहे हैं कि तुम इतनी खुश क्यों हो? आप बतायें कि खुशी का कोई पार है? मैंने वे दृश्य देखे हैं, शायद आपने भी नहीं देखे। उनको देखने के बाद मेरे मन में इतना आनंद उमड़ रहा है कि मैं आपको बता नहीं सकती। यह सब क्या है? मैं नहीं जानती। परंतु ऐसा हुआ है।' अब कौन बताये? नाभि ने सुन लिया। नाभि भी स्वप्न के बारे में नहीं जानते थे। उत्तरकाल में यह परंपरा रही–'कोई सपना आया, स्वप्नविद् ज्योतिषी को बुलाया। व्याख्या करा ली। भगवान महावीर की मां को भी चौदह स्वप्न आये। पिता सिद्धार्थ ने स्वप्नविद् को बुलाया। स्वप्न विशेषज्ञ ने स्वप्न-फल की पूरी व्याख्या कर दी। किंतु नाभि के युग में न स्वप्नविद्या का विकास हुआ था, न ज्योतिष का विकास हुआ था, न कोई अष्टांग निमित्त था। किसको बुलाये और कौन व्याख्या करे?

स्वप्न बड़े सूचक होते हैं। न जाने स्वप्नों के आधार पर कितने बड़े-बड़े काम भी हुए हैं। धोखा भी बड़ा होता है स्वप्नों के आधार पर। काम भी बहुत होते हैं। कितने विज्ञान के आविष्कार सपनों के आधार पर हुए हैं। वैज्ञानिक सिलाई की मशीन बना रहा था। समस्या सुलझ नहीं रही थी कि सूई कहां से डाली जाये। सपने में समाधान आया और काम हो गया। प्रसिद्ध प्रसंग है कालूयशोविलास का। जो बात कभी संदिग्ध रह जाती, निर्णय नहीं होता, पूज्य कालूगणी को उसका सपने में समाधान मिल जाता। स्वप्न बहुत सूचक होता है।

भगवती सूत्र में चालीस प्रकार के स्वप्नों का वर्णन है। स्वप्न क्या-क्या करते हैं? इसका पूरा विवरण है। स्वप्न चित्त को समाधि देने वाले होते हैं। मन बड़ा अशांत था, बेचैन था। सपना आया, अशांति गायब, बेचैनी गायब। चित्त प्रफुलित हो गया। सपना समाधि देने वाला हो गया, समस्या का समाधान करने वाला हो गया।

वर्तमान मनोवैज्ञानिकों ने स्वप्न विद्या का बड़ा विकास किया है। युंग और फ्रायड ने स्वप्नों का विश्लेषण किया। स्वप्न विश्लेषण की एक परंपरा चल पड़ी। आज स्वप्न विज्ञान विकसित हो गया। स्वप्न किस प्रकार प्रतीकात्मक होते हैं और क्या सूचनाएं देते हैं? प्राचीन युग में स्वप्न विद्या बहुत विकसित थी। आज भी स्वप्न विद्या बहुत विकसित

होती जा रही है। दोनों के फलित थोड़े भिन्न हो सकते हैं। आज स्वप्न का विश्लेषण मनोविज्ञान के संदर्भ में है और प्राचीनकाल में सूचनाओं के संदर्भ में ज्यादा था।

स्वप्न का बड़ा अर्थ होता है। माना जाता है कि तीर्थंकर की मां चौदह स्वप्न देखती है। कुछ सोलह मानते हैं। चक्रवर्ती की मां चौदह या सोलह स्वप्न देखती है। इन स्वप्नों का एक विशेष अर्थ होता है। इतना तो निश्चित है कि गर्भावस्था में जो आने वाला जीव है, आने वाली आत्मा है वह अपने आने की सूचना दे देती है। भंवरलालजी दूगड़ सरदारशहर के विशिष्ट व्यक्ति थे। अनेक कलाओं में दक्ष थे। आयुर्वेद, साधना, मंत्र आदि अनेक विषयों के ज्ञाता थे। उनके जीवन वृत्त का एक प्रसंग है कि जब वे गर्भ में आए तब स्वप्न में सिंह आया और बोला–'मां! मैं तुम्हारे गर्भ में आना चाहता हूं।' एक सूचना मिल गई। इस प्रकार की अनेक घटनाएं मिलती हैं, जो सूचनाएं देती हैं।

नाभि ने कहा–'मरुदेवा! तुम्हारा हर स्वप्न उचित है। तुम्हें सपना भी एक नहीं आया, स्वप्नों की एक शृंखला आई है। चौदह स्वप्न तुमने देखे हैं। पूरी बात तो हम नहीं जानते पर अब ऐसा लगता है कि कोई नई घटना घटित होने वाली है। अब इस कुलकर की परंपरा में कोई शक्तिशाली युगल जनमेगा, यह मैं कह सकता हूं।

लगता है कुछ अभिनव होगा,
जो न हुआ अब तक जग में।
पावन दीप लिए आशा का,
रक्त प्रवाहित रग रग में।।
मंगल मंगल मंगल मंगल,
अति मंगल होने वाला।
सुत जन्मेगा महामहिम नव,
सृष्टि बीज बोने वाला।।
प्रद्योतन की प्रथम किरण ने,
युगल चरण का स्पर्श किया।
अधिप्रकाश की शुभ बेला का,
श्रेयोमय संकेत दिया।।

अगर कोई जानकार होता, ज्योतिर्विद होता, स्वप्नशास्त्री होता तो बता देता–'तुमने वृषभ देखा है, वृषभ की एक विशेषता है–'जो भार स्वीकार कर लिया, उसे कभी बीच में नहीं डालेगा। हाथी देखा है तो हाथी जैसा उन्नत उसका जीवन होगा, श्वेत आभा वाला होगा। चारों दिशाओं में फैलने वाला दिग्गज होगा। सिंह देखा है तो तुम्हारा पुत्र पराक्रमी होगा। यह व्याख्या उस समय तो प्राप्त नहीं थी। उस समय यह मात्र एक घटना थी। जाने-अनजाने हर्ष हो गया। बात समाप्त हो गई।

दोनों प्रसन्न, नाभि भी प्रसन्न और मरुदेवा भी बहुत प्रसन्न। अंतःकरण में आनंद उछल रहा था। समय बीता और युगल का जन्म हुआ। जनमते समय वह अनाम होता है। नाम आरोपित है। शरीर लेकर आता है, प्राण लेकर आता है, इंद्रियों को लेकर आता है, मन को लेकर आता है पर नाम बाद में आरोपित किया जाता है। संस्कार बहुत सारे साथ आते हैं, बहुत सारे आरोपित होते हैं।

तीर्थंकर के जन्म के समय की एक परंपरा है। कहा गया–'तीर्थंकर का जन्म होता है, उस समय पूरे विश्व में एक साथ प्रकाश होता है। यहां तक बतलाया गया कि 'जन्म कल्याणक के समय एक क्षण के लिए नरक में भी दुःख का अनुभव नहीं होता। ऐसी एक विशिष्ट घटना है तीर्थंकर का जन्म। किंतु उस समय कोई नहीं जानता था कि तीर्थंकर क्या होता है। बस, एक युगल का जन्म हो गया। ऐसा लगता था कि कोई नया विशिष्ट जन्म हुआ है। वह बात, जो वाणी नहीं बताती, तरंगें बता देती हैं, प्रकंपन बता देते हैं। इस प्रकार के प्रकंपन वायुमंडल में फैलते हैं कि वे प्रकंपन स्वयं व्याख्या कर देते हैं और समझने वाला समझ जाता है। प्रकंपन घटना के सूचक बन जाते हैं। पूरे वातावरण में एक प्रकार के प्रकंपन फैल गए और वे सबको सुखद लग रहे थे, आनंद दे रहे थे।

ऋषभ का अवतरण आनंद, शांति और सुख की उपलब्धि का विशिष्ट क्षण बन गया। ❑

धृति धारण करो

आचार्य महाश्रमण

आदमी के जीवन में धृति की शक्ति होनी चाहिए। जिसमें धृति होती है, उसकी आत्मा निर्मल रहती है, वह सुखी रहता है। जिसमें धृति का अभाव होता है, वह व्यक्ति संकल्प-विकल्पों के वशीभूत होकर पग-पग पर विषादग्रस्त हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में धृति के तीन प्रकार बताए गए हैं–सात्विक धृति, राजस धृति और तामस धृति। सात्विक धृति के बारे में गीताकार ने कहा–

धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्विकी।।

जिस अव्यभिचारिणी धारणशक्ति से मनुष्य मन, प्राण और इंद्रियों की गतिविधियों को धारण करता है। हे अर्जुन! वह धृति सात्विक प्रकार की होती है।

धृति यानी धारण करने की शक्ति। सात्विक धृति वह होती है जिस धृति के द्वारा आदमी योग-साधना व ध्यान-साधना का अभ्यास करके प्राण, मन और इंद्रियों के व्यापार को नियंत्रण में रख लेता है, उनको धारण कर लेता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में मन और भाव के बारे में अनेक तथ्य मिलते हैं। वहां कहा गया है कि हमारे भाव विभिन्न होते हैं। मनोज्ञ और अमनोज्ञ भाव हमारे मन में आ जाते हैं। उन सबको सहन करना और उत्तेजना का अवसर आ जाने पर भी अपने आपको उत्तेजित न होने देना, यह धीरता की बात है। सचमुच! विकार का हेतु मिल जाने पर भी जिनके चित्त विकृत नहीं होते हैं, वे व्यक्ति धीरपुरुष कहलाते हैं। ऐसे व्यक्ति अपने जीवन में कष्ट आ जाने पर भी कभी न्याय मार्ग से विचलित नहीं होते। हम धृति का विकास करने का प्रयास करें। हमारी आस्था सचाई पर हो, अच्छाई पर हो। हम न्याय के पथ पर चलने का प्रयास करें।

हमारी धृति इतनी सुंदर, स्वच्छ और सात्विक हो कि हमारे भीतर में अपने मन, प्राण और इंद्रियों पर नियंत्रण करने की शक्ति विकसित हो जाए।

धृति आदमी के जीवन का एक गुण होता है, परंतु सबमें एक समान धृति का स्वरूप नहीं होता। किसी व्यक्ति में सात्विक धृति होती है तो किसी में राजसी धृति होती है और किसी में तामसी धृति भी होती है। सात्विक धृति बहुत उत्तम कोटि की होती है। उसमें योग-ध्यान-साधना के द्वारा मन, प्राण और इंद्रिय-व्यापार को संतुलित व नियमित किया जाता

है। राजसी धृति के साथ आसक्ति जुड़ी हुई रहती है और तामसी धृति तो और भी निकृष्ट होती है। राजसी धृति के बारे में श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से श्रीकृष्ण कहते हैं–

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसफेन फलाकाक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी।।

जिस धृति के द्वारा फल की इच्छा वाला मनुष्य अत्यंत आसक्ति से धर्म, अर्थ और कामों को धारण करता है, हे अर्जुन! वह धृति राजसिक प्रकार की होती है।

भारतीय वाङ्मय में त्रिवर्ग बताये गये हैं–धर्म, काम और अर्थ। हम विचार करें कि मनुष्य के जीवन में इन तीनों के सिवाय और कुछ भी है क्या? मनुष्य के जीवन में या तो धर्म दिखाई देगा या अर्थ दिखाई देगा या काम दिखाई देगा। पुरुषार्थ चतुष्टय में एक चौथा तत्त्व माना गया है–मोक्ष। हम मोक्ष की बात को एक बार छोड़ दें, केवल त्रिवर्ग पर विचार करें। जिस आदमी के जीवन में त्रिवर्ग ठीक तरह नहीं होता है यानी पैसा भी पूरा नहीं है, काम भी नहीं है और न जीवन में धर्म का प्रभाव है, उस आदमी के जीवन को एक मुर्दे की तरह कहा जा सकता है। जैसे लोहार की धौंकनी संकुचित-विकुचित होती है, परंतु वह सप्राण नहीं कहलाती। इसी तरह श्वास लेने और छोड़ने के कारण आदमी का पेट संकुचित-विकुचित होता है। इतने मात्र से आदमी को सजीव नहीं कहा जा सकता। गीताकार ने कहा कि राजसी धृति उसमें होती है, जिस आदमी का धर्म, काम और अर्थ के प्रति आसक्ति का भाव होता है। धर्म के साथ भी यह फलाकांक्षा या आसक्ति जुड़ जाती है कि मैं धर्म करूं तो उसका मुझे अमुक-अमुक फल मिलना चाहिए।

गार्हस्थ्य में धर्म, अर्थ और काम–इन तीनों में सामंजस्य होना आवश्यक है। जैसे एक गृहस्थ को अर्थ भी चाहिए। उसे अर्थ-प्राप्ति के लिए प्रयास भी करना पड़ता है। पैसा नहीं है तो जीवन में कई बातों की कमी रह जाती है। कइयों के पास बहुत अर्थ होता है। जो अर्थ-संपन्न व्यक्ति हैं, उन्हें कभी अर्थ का घमंड नहीं करना चाहिए। अर्थ का क्या पता, आज है और कल न भी रहे। वह कब करोड़पति से रोड़पति बन जाए। इसलिए अर्थ के प्रति ज्यादा मोह या आसक्ति का भाव नहीं रखना चाहिए। आदमी को अनासक्ति का भाव बढ़ाना चाहिए, त्याग की चेतना बढ़ानी चाहिए और धन का कभी दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। गलत कार्यों में धन का नियोजन नहीं करना चाहिए। ये बातें अर्थ के साथ जुड़ जाती है तो अर्थ अनर्थ होने से बच सकता है। अन्यथा 'अर्थमनर्थं भावय नित्यम्' अर्थात् यह अर्थ अनर्थकारी भी बन जाता है।

प्राचीन साहित्य में कहा गया कि तुम गृहस्थ हो तो अर्थ के पीछे इतने ज्यादा मत पड़ो कि धर्म छूट जाए और काम में भी कमी आ जाए। काम के पीछे भी इतने ज्यादा मत पड़ो कि अर्थार्जन कम हो जाए और धर्म भी छूट जाए। धर्म के पीछे भी इतने ज्यादा मत पड़ो कि अर्थ और काम दोनों बाधित हो जाएं। जैसे कोई गृहस्थ यह सोचे कि मैं तो दिनभर सामायिक करूंगा, साधुओं के ठिकाने में ही रहूंगा तो उसका गार्हस्थ्य कैसे चलेगा? घर में अर्थ की अपेक्षा है और कमाई नहीं करता है तो घर के बाल-बच्चे क्या खाएंगे? गृहस्थ के लिए अर्थ, काम और धर्म–इन तीनों में संतुलन होना आवश्यक है। अर्थ और काम पर धर्म का अंकुश होता है तो अर्थ और काम भी संतुलित रहेंगे। अगर धर्म के बैनर के नीचे अर्थ और काम होते हैं तो वे सुश्रृंखल रहेंगे और यदि धर्म का बैनर नहीं रहेगा तो फिर अर्थ और काम उच्छृंखल भी हो सकते हैं। इसलिए गीताकार ने कहा कि गृहस्थ को धृति के द्वारा धर्म, अर्थ और काम–इन तीनों को धारण करना चाहिए। साधना करनेवाला साधु अर्थ की आसक्ति से भी बचे और काम से भी बचे, पूर्ण ब्रह्मचर्य का जीवन जीए, परंतु जो गृहस्थ है उसके लिए काम भी मान्य है, अर्थ भी मान्य है और साथ में धर्म का योग भी मान्य है। केवल भोग जीवन में न हो, योग भी जीवन में होना चाहिए। केवल राग जीवन में न हो, विराग या त्याग भी जीवन में होना चाहिए।

आदमी मनोरंजन करता है और मनोरंजन के लिए कितने-कितने रमणीय दृश्य देखता है, बातें करता है, हंसी-मजाक करता है। मनोरंजन के साथ आत्मरंजन को भी याद रखना चाहिए, आत्मरमण करना चाहिए। मनोरंजन का सुख तो भौतिक सुख है, तात्कालिक सुख है। आत्मरंजन या आत्मरमण का सुख परम सुख होता है। आदमी को केवल शरीर में नहीं रहना चाहिए, उसको आत्मा की ओर भी ध्यान देना चाहिए। केवल भौतिकता में नहीं रहना चाहिए, उसको आध्यात्मिकता की ओर भी ध्यान देना चाहिए। केवल मन, वाणी और शरीर तक ही नहीं रहना चाहिए, बल्कि मन, वाणी, शरीर से आगे अमन, अवाक् और अशरीर की भूमिका का भी विचार करना चाहिए, चिंतन करना चाहिए। हम दिनभर बोलते ही नहीं जाएं, बल्कि न बोलना भी सीखें। हम दिनभर सोचते ही नहीं रहें, बल्कि निर्विचार होने का भी अभ्यास करें। दिनभर शरीर से क्रियाएं ही न करें, बल्कि स्थिरता का भी अभ्यास करें। भौतिकता पर आध्यात्मिकता का अंकुश रहना चाहिए। जिसमें फल की आकांक्षा रहती है, उस धृति को गीताकार ने राजसी धृति की संज्ञा दी है। आदमी को राजसी धृति से सात्विक धृति की ओर प्रस्थान करना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता में तामसी धृति का वर्णन करते हुए कहा गया है–

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी।।

जिस धृति के द्वारा कोई मूर्ख व्यक्ति निद्रा, भय, शोक, विषाद और अभिमान को नहीं त्यागता, हे पार्थ! वह तामसिक प्रकार की धृति होती है।

धृति का मतलब है पकड़कर रखना, धारण करना। धारण अच्छी बात को भी किया जा सकता है और धारण गलत चीज को भी किया जा सकता है। तामसी धृति के अंतर्गत आदमी विकारों को धारण करता है या दुर्गुणों को धारण करता है, इसलिए वह धृति तो होती है, परंतु तामसी धृति होती है।

पहला तत्त्व है–निद्रा

जिसकी नींद ज्यादा लेने की आदत होती है, वह तामसी धृतिवाला व्यक्ति होता है। यद्यपि निद्रा शरीर के लिए, स्वास्थ्य के लिए आवश्यक भी है। आवश्यक निद्रा न ली जाए तो शरीर में कठिनाई पैदा हो सकती है। हम श्रम करते हैं तो शरीर को विश्राम की भी अपेक्षा होती है। अगर आदमी चार दिन बिल्कुल भी न सोए और काम ही काम करता रहे तो आखिर शरीर जवाब देने की स्थिति में आ जाएगा। यानी शरीर की मांग है कि मेरे से श्रम लो, पर साथ में मुझे विश्राम भी दो। श्रम और विश्राम का संतुलन रहना चाहिए। वृद्धावस्था आने के बाद निद्रा की अपेक्षा कम हो सकती है। नींद जल्दी जाग जाए और निद्रा की अपेक्षा ज्यादा न रहे तो आदमी भले कम नींद ले, परंतु जितनी नींद की अपेक्षा शरीर को है, उतनी लेनी चाहिए।

एक बच्चा सात-आठ घंटा भी सो सकता है तो एक युवा की नींद छह घंटे में भी पूरी हो सकती है। अपेक्षित नींद से ज्यादा नींद लेने की आदत या आलस्य की आदत का होना और नींद में ऐसे वैसे सपने आना, इस प्रकार की स्थिति का होना तामसी धृति का एक लक्षण होता है।

दूसरा तत्त्व है–भय

जिसमें भय की संज्ञा है, जो भय को पकड़े रखता है, बात-बात में डरता है, उसमें तामसी धृति होती है। जैन वाङ्मय में चार संज्ञाएं अथवा दस संज्ञाएं बताई गईं हैं। उनमें एक संज्ञा है–भय संज्ञा। प्रायः बच्चों को डर लगता है। रात के अंधेरे में बाहर जाना भी उनके लिए कठिन होता है। यदि वे रात्रि में भूत आदि की बात सुन लेते हैं तो कभी-कभी रात को नींद आना भी कठिन हो जाता है। अनेक बार हम काल्पनिक भय से डर जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री महाप्रज्ञजी जब छोटी अवस्था में थे, तब एक रात किसी ने भूत आदि की बातें बता दीं। फिर रात में उनको नींद आनी मुश्किल हो गई। बचपन में ऐसी बातें सुन ली जाती हैं तो फिर रात

को कई बार वे ही चीजें दिखने लग जाती हैं। यह भय की संज्ञा है। किसी व्यक्ति में प्राणीविशेष के प्रति भय की संज्ञा होती है, जैसे कि कोई आदमी चूहे से डरता है। हालांकि आदमी के सामने चूहा छोटा प्राणी होता है, किंतु कोई ऐसी भय संज्ञा बैठ जाती है कि फिर चूहे का नाम भी आ जाए या चूहा दीख भी जाएं तो आदमी को डर लगने लगता है। किसी को बिल्ली से डर लगता है, किसी को सर्प से तो किसी को छिपकली से डर लगता है। यह प्राणीविशेष के संदर्भ में होने वाली भय संज्ञा है।

आदमी अभ्यास के द्वारा, संकल्प के द्वारा या कुछ आलंबन के द्वारा अभय की साधना कर सकता है। हमारे पास तो नवकार मंत्र जैसा इतना पवित्र और शक्तिशाली मंत्र है, फिर हमें तो डरने की जरूरत ही नहीं है। आदमी को जब भय लगे तो जिसका जो आस्था का केंद्र है, उसका स्मरण कर लिया जाता है तो डर की स्थिति को काफी पार किया जा सकता है। भय एक गुब्बारा है। हम उसमें सूई से छेद कर दें तो वह गुब्बारा फूट सकता है और वास्तविकता सामने आ सकती है।

तीसरा तत्त्व है–शोक

जब प्रिय का वियोग हो जाता है, तब मन में शोक भी हो जाता है। हमारी साधु संस्था में कोई दिवंगत हो जाता है तो शोक करने की प्रथा नहीं है, परंतु गृहस्थों में यह प्रथा चलती है। गृहस्थों में कोई दिवंगत हो जाए तो कई दिनों तक उसका शोक भी रखा जाता है। शोक के बारे में मेरा विचार है कि आदमी शोक न करे, पर संयम का अभ्यास करे। कोई प्रिय व्यक्ति चला जाए तो आदमी यह सोचे कि घर में मृत्यु का प्रसंग हो गया, इसलिए सात दिन, दस दिन अथवा अमुक समय तक हम आध्यात्मिक अनुष्ठान करेंगे, धार्मिक ग्रंथों को पढ़ेंगे, संतों के दर्शन करेंगे आदि। महामना गुरुदेव तुलसी और परमपूज्य गुरुदेव महाप्रज्ञजी का जब महाप्रयाण हुआ था, तब हमने एक सप्ताह तक आध्यात्मिक अनुष्ठान किया था। हमने शोक को दूसरा रूप दे दिया कि इस सप्ताह में विशेष रूप से गुरुदेव की स्मृतियां करें, जप करें, सभाएं करें। मन में दुःख के रूप में शोक हो सकता है, किंतु उसको आध्यात्मिकता का रूप दे दिया जाए तो माहौल अलग बन जाता है। जब कभी मृत्यु का संवाद आता है और मैं संदेश देता हूं तो यह बात प्रायः कहता हूं कि तुम नवकार मंत्र आदि के जप का प्रयोग करो ताकि घर का धार्मिक माहौल बन जाए। इस प्रकार शोक भी एक विकार है, जो तामसी धृति का लक्षण है।

चौथा तत्त्व है–विषाद

आदमी के मन में कई बार विषाद या दुःख हो जाता है। महाभारत में जब युद्ध का प्रसंग सामने था, तब अर्जुन को भी विषाद हो गया था। उसने कहा–युद्ध में अपने लोग हैं, इनके साथ मैं कैसे लड़ूंगा? मन में एक विषाद का भाव पैदा हो गया। आदमी कई बार डिप्रेशन में चला जाता है, अवसाद में चला जाता है, यह भी विकार है और तामसी धृति का लक्षण है।

पांचवां तत्त्व है–अहंकार

आदमी यह सोचे कि जो कुछ मुझे प्राप्त हुआ है, मैं उसका उपयोग करूं या उसका त्याग करूं, संयम करूं, परंतु उसका अहंकार न करूं। अभिमान मदिरापान के समान है। जैसे मदिरापान से उन्मत्तता आ जाती है, वैसे ही अहंकार से आदमी अंधा बन जाता है। धन की, ज्ञान की अथवा कोई भी संपदा मिल जाती है तो मद आंखों वालों को भी अंधा बना देता है, कान वाले को भी बहरा बना देता है। अहंकार के कारण न आदमी दूसरों की सुनता है और न किसी को सम्मान देता है। अपने आपको बहुत कुछ या सब कुछ मान लेता है। चारों ओर एक प्रकार का अंधत्व व्याप जाता है।

गीताकार ने कहा कि मद भी एक विकार है। जो मदोन्मत्त रहता है, उसमें तामसी धृति होती है। दुष्ट बुद्धिवाला व्यक्ति अपने विकारों को छोड़ने का प्रयास नहीं करता, परंतु ज्ञानी आदमी विकारों को छोड़ने का प्रयास अवश्य करे। ❐

जन्मदिन एक समूची सृष्टि का

आचार्य तुलसी

जन्म-जयंती क्यों?

आज हम भगवान महावीर की जन्म-जयंती मना रहे हैं। क्यों? क्या ढाई हजार वर्ष की लंबी कालावधि को आर-पार उद्भासित करनेवाला भगवान महावीर का व्यक्तित्व अपने पीछे कोई जीवंत आहट छोड़ गया है या अतीत के व्यामोह से अनुबंधित होकर हम ऐसा कर रहे हैं? अतीत बहुत सुनहरा होता है। वह जितना दूर और जितना अज्ञात रहता है, उसके प्रति आकर्षण उतना ही अधिक बढ़ता है। क्या इसी हेतु की प्रेरणा से हजारों वर्ष पहले जन्मे व्यक्ति को मनाने का यह उपक्रम है या वर्तमान के संदर्भ में भी इसकी कोई उपयोगिता है?

उपर्युक्त प्रश्न को सामने रखकर मैं जब विचार करता हूं तो ऐसा प्रतीत होता है कि महावीर के प्रति लोकमानस में जो आकर्षण है, वह केवल अतीत के अनुराग से नहीं है, वह इसलिए है कि महावीर दर्शन की आज भी उपयोगिता है। वह केवल श्रद्धा और परंपरा के बल पर ही महत्त्वपूर्ण नहीं है वरन् उसमें जीवन की अहम समस्याओं के समाधान हैं। जो धर्म या दर्शन जन-जीवन की समस्याओं की अनदेखी कर देता है, वह दीर्घकाल तक अपने अस्तित्व को सुरक्षित नहीं रख सकता।

समन्वयी प्रक्रिया

भगवान महावीर न शाश्वतवादी थे और न अशाश्वतवादी। शाश्वतवादी का प्राचीनता में विश्वास होता है। अशाश्वतवादी का विश्वास नवीनता से जुड़ा हुआ रहता है। महावीर प्राचीनता और नवीनता–दोनों से परे थे। उन्हें न प्राचीनता से कोई व्यामोह था और न ही था नवीनता से कोई आकर्षण। उनके दर्शन के अनुसार हर नवीनता, प्राचीनता से अभिन्न होती है और हर प्राचीनता में नवीनता के बिंब तैरते रहते हैं। जैसे हर अतीत वर्तमान के वातायन में झांकता रहता है तथा हर वर्तमान अतीत से संबद्ध होता है। इसी प्रकार प्राचीनता और नवीनता ये दोनों साथ-साथ चलते हैं।

भगवान महावीर ने ऐसी समन्वयी प्रक्रिया को प्रस्तुत किया, जिसमें किसी एक अवयव को छोड़कर नहीं देखा जा सकता। इसका अर्थ यह होता है कि महावीर के दर्शन में कोई काना नहीं है, कोई लंगड़ा नहीं है, जबकि आज की सबसे बड़ी समस्या काने और लंगड़ेपन की है। इस समस्या को निरस्त करने के लिए महावीर के दर्शन को समझना जरूरी है और उसे दर्शन के तार्किक धरातल से ऊपर उठाकर अनुभूति के स्तर पर समझना जरूरी है।

सापेक्षता का दर्शन

वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में धर्मनीति, समाजनीति या राजनीति किसी भी क्षेत्र की उलझन यह है कि वहां कोई भी निर्णय सर्वांगीण नहीं होता। एकांगी सत्य को पूर्ण सत्य मानकर चलने से समस्या उलझेगी नहीं तो और क्या होगा? महावीर ने अपने युग को इस समस्या के प्रति बहुत सावधान किया था। उनका युग अतीत और अनागत, दोनों से प्रतिबद्ध था। इस दृष्टि से उन्होंने

ऐसे त्रैकालिक सत्यों का उद्घाटन किया, जो हर युग की त्रासदी को तोड़नेवाले थे। उन्होंने कहा–'किसी भी सापेक्ष मूल्य को निरपेक्ष मानकर मत चलो। सापेक्षता-शून्य निरपेक्षता आग्रह को जन्म देती है और उलझनों को बढ़ाती है, इसलिए निश्चय और व्यवहार सत्य को अपनी-अपनी भूमिकाओं पर ही समझने का प्रयत्न होना चाहिए।'

व्यवहार स्थूल सत्य या पर्याय को अभिव्यक्ति देता है और निश्चय सूक्ष्म सत्य को रूपायित करता है। मनुष्य समाज मुख्यत: व्यवहाराधीन रहता है, किंतु समस्या सुलझाने के लिए केवल व्यवहार ही पर्याप्त नहीं होता। मन की उलझन सुलझाने की दृष्टि से तो वह सर्वथा अपर्याप्त है। जब तक व्यक्ति को यथार्थ उपलब्ध नहीं होता, तब तक उसकी हर समस्या असमाहित रहती है।

भगवान महावीर ने निश्चय और व्यवहार की सापेक्षता का प्रतिपादन करते हुए कहा–'मनुष्य स्थूल जगत में जीता है, पर वही अंतिम सत्य नहीं है। उसे सूक्ष्म सत्य की खोज का प्रयत्न निरंतर चालू रखना चाहिए। आज विज्ञान एक-से-एक उपलब्धियों की शृंखला को आगे बढ़ा रहा है। क्यों? इसलिए कि वह सूक्ष्म सत्य की खोज में निरत है। वह जहां तक पहुंचा है, उसे ही अंतिम सत्य मानकर रुकता नहीं है। भौतिक जगत में होनेवाले विकास का भी एकमात्र यही हेतु है। अब रही बात दार्शनिक लोगों की। उन्होंने सूक्ष्म सत्य की खोज बंद कर दी। वे केवल स्थूल सत्य को आधार मानकर चले। फलत: समस्याएं बढ़ीं, पर उनका सही निदान और सही चिकित्सा हाथ नहीं लगी।

आवश्यक है सेतु का निर्माण

यह तथ्य निर्विवाद है कि उलझनें सूक्ष्म जगत से आती हैं। मनुष्य की अपनी वृत्तियां, आवेश, प्रियता-अप्रियता की अनुभूति आदि चेतना के सूक्ष्म स्तरों पर घटित होने वाली स्थितियां हैं। इनका समाधान खोजने का प्रयास स्थूल सत्य के माध्यम से होता है तब जीवन में विसंगति पैदा हो जाती है। यह कोरा दार्शनिक सत्य ही नहीं है। समस्त जगत को प्रभावित करने वाला तत्त्व यही है, इसलिए इसको दार्शनिक कहकर उपेक्षित नहीं किया जा सकता। जब तक स्थूल और सूक्ष्म सत्य के मध्य में सेतु का निर्माण नहीं हो जाता, इस सचाई का अनुभव भी नहीं हो सकता। इस अनुभूति के अभाव में न तो समस्या को समाधान मिल सकता है और न ही महावीर का दर्शन समझ में आ सकता है।

महावीर को समझने का अर्थ है सूक्ष्म सत्य की अनुभूति। महावीर को पहचानने का अर्थ है स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रयाण। महावीर को जानने का अर्थ है बहिर्मुखता से अंतर्मुखता की ओर गति। महावीर को विश्लेषित करने का अर्थ है अंधकार से प्रकाश की उपलब्धि। महावीर का जन्मदिन मनाने का अर्थ है महावीर की भांति जीवन को जीने का संकल्प। इस संकल्प को आंशिक या संपूर्ण स्वीकृत करने वाले व्यक्ति ही अपने-आपको भगवान महावीर का अनुयायी मान सकते हैं। वे ही उनके दर्शन को समझ सकते हैं और वे ही उनके जन्मदिन मनाने की प्रक्रिया को क्रियान्वित कर सकते हैं।

इकोलॉजी के संदर्भ में

महावीर के अनुसार मानव-जाति के प्रति ही नहीं, संपूर्ण प्राणी-जगत के प्रति समत्व की अनुभूति होनी चाहिए। वे प्राणी स्थूल हों या सूक्ष्म, चर हों या अचर, सबल हों या निर्बल–उन सबमें प्राणशक्ति है, चैतन्य है। यदि इनमें से किसी भी प्रकार के प्राणियों का संतुलन गड़बड़ाता है तो सारे संसार की स्थिति गड़बड़ा जाती है। आज की भाषा में जिसे 'इकोलॉजी' कहा जाता है, वह भगवान महावीर के समत्वमूलक दृष्टिकोण का एक प्रतिबिंब है। समता का यह सिद्धांत जब व्यवहार में फलित होता है, तभी व्यक्ति जीने का सही आनंद पा सकता है।

इकोलॉजी के संदर्भ में अहिंसा की व्याख्या की जाए तो कुछ नई दृष्टियां और नया चिंतन हमारे सामने

आता है। एक तथ्य है जंगल काटने का। जंगल काटना हिंसा है। हिंसा त्याज्य है, इतना कहकर किसी व्यक्ति को हिंसा से विरत नहीं किया जा सकता। किंतु इसी तथ्य को सांगोपांग रूप से निरूपित किया जाए तो यह बात सहज भाव से समझ में आ जाती है कि एक जंगल काटने मात्र से समस्त जगत की व्यवस्था किस प्रकार अस्त-व्यस्त हो जाती है। जिस क्षेत्र का जंगल कटता है, उसके पार्श्ववर्ती भू-भाग में वर्षा कम होती है।

वर्षा की कमी का प्रभाव कृषि उत्पादन पर पड़ता है। फसल पर्याप्त नहीं होती है तो पेट नहीं भरता है और संसार में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। वनस्पति की उत्पादकता में कमी होने से जीव-जगत पर जो प्रतिकूल प्रभाव होता है, वह केवल संयम की दृष्टि से ही नहीं, जागतिक व्यवस्था की दृष्टि से भी चिंतनीय है। क्योंकि बर्तनों की पंक्ति के नीचे से यदि एक बर्तन भी खिसकाया जाता है तो वह पूरी पंक्ति अव्यवस्थित हो जाती है। मकान की एक ईंट को इधर-उधर कर देने से पूरे मकान को खतरा हो जाता है। इसी प्रकार जगत की सहज व्यवस्था में एक पदार्थ को इधर-उधर कर देने से समूची जागतिक व्यवस्था प्रभावित होती है। फिर वह पदार्थ चाहे पानी, पृथ्वी या वनस्पति कोई भी है।

समस्या हिंसा की

भगवान महावीर ने अहिंसा के निरूपण में जीव संयम की बात पर जितना बल दिया, उतना ही बल अजीव संयम पर भी दिया। इस क्रम में अचेतन पदार्थों का दुरुपयोग भी हिंसा की कोटि में परिगणित है। महावीर के इस दर्शन से गांधीजी की पूर्ण सहमति रही। उन्होंने वस्तु के दुरुपयोग और अनपेक्षित संग्रह–दोनों को हिंसा बताया। हिंसा की परिभाषा किसी प्राणी के प्राण-वियोजन तक ही सीमित न रहकर समूचे जगत की व्यवस्था से संबद्ध हो जाती है। ऐसी स्थिति में हिंसा की समस्या युग की समस्या बन विश्व की समस्या बन जाती है। इस समस्या को निरस्त करने के लिए अहिंसा को उसके सूक्ष्म स्तरों पर ही समझना होगा।

अहिंसा भगवान महावीर के जीवन का दूसरा पर्याय है। उन्होंने प्राणी मात्र में रही हुई जिजीविषा, स्वतंत्रता और सुखेप्सा की वृत्ति को समझा, वैसे ही अचेतन जगत की प्रवृत्तियों को भी आत्मसात कर लिया। इस दृष्टि से उनका जन्मदिन समूची सृष्टि का जन्मदिन है, जो मौत की ओर अग्रसर विश्व को जीवन की नई व्याख्या देकर उसके महत्त्व से परिचित कराता है। जीवन की भव्यता और दिव्यता को समझ उसका सदुपयोग करनेवाला तथा युगीन समस्याओं के सामने चुनौती बनकर अडिग रहने वाला व्यक्ति ही महावीर-जयंती की सार्थकता को प्रमाणित कर सकता है।

तादात्म्य का अनुभव

इस अवसर पर जो व्यक्ति विश्व-चेतना के साथ तादात्म्य की अनुभूति कर लेता है, वह किसी भी प्राणी की व्यथा को अपनी व्यथा अनुभव करता है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत तुकाराम कहीं जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने एक भैंसे का वध होते देखा। उस दृश्य को देखकर उनकी आत्मा प्रकंपित हो गई। उनके रोम-रोम में सिहरन व्याप गई। वे वहीं खड़े रह गए और बोले– 'भाई! इस भैंसे का वध मत करो।' वध करने वाले ने पूछा–'क्यों?' संत तुकाराम ने अपने मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए कहा–'तुम इसका वध करते हो तब मुझे ऐसा महसूस होता है कि मेरा वध हो रहा है, मुझे पीड़ा हो रही है और भीतर से मेरी आत्मा कराह रही है।' यह बात उसकी समझ में नहीं आई तो उन्होंने आगे कहा–'भाई! संसार के जितने जीव-जंतु हैं, उन सबके साथ मेरा तादात्म्य है। उनकी आत्मा में मुझे अपनी आत्मा का दर्शन होता है। उनकी सुखानुभूति से मैं सुखी होता हूं तो उनकी कष्टानुभूति मुझे व्यथित क्यों नहीं करेगी?' यह बात सुनने वाले लोग चकित थे, क्योंकि उन्होंने भगवान महावीर के दर्शन को नहीं समझा था। महावीर-दर्शन में विश्वास रखने वाला व्यक्ति प्राणीमात्र के प्रति एकत्व की अनुभूति सहज तादात्म्य से कर लेता है। ❐

वोट किसे दें और कैसे दें?

आचार्य तुलसी

हर युग का वर्तमान सत्य को सूली पर चढ़ाता है और भविष्य उसकी आरती उतारता है। राजनीति का एक सच है लोकतंत्र। भारतीय लोकतांत्रिक शासन प्रणाली का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। ब्रिटिश शासन को अलविदा कहकर भारतीय राजनीति के शिखर पुरुषों ने लोकतंत्र को स्वीकार किया। ब्रिटिश शासन से विरासत में प्राप्त इस शासन-प्रणाली को विवेकपूर्वक अपनाया गया या इसे अपनाने की बाध्यता थी? यह प्रश्न अतीत में झांकने के लिए विवश करता है। उस समय भारत में स्वतंत्रता की लहर थी। देश की युवापीढ़ी उस लहर से प्रभावित थी।

महात्मा गांधी का नेतृत्व युवकों के लिए बहुत बड़ा आश्वासन था। उन्होंने आजादी के लिए यातनाएं झेली। उनके प्रेरणास्रोत गांधी अहिंसा के उपासक थे। उन्होंने अहिंसा के दुर्भेद्य किले में खड़े होकर भारत को स्वतंत्र कराया। स्वतंत्रता से पहले उनके सामने परिस्थितियां इतनी अनुकूल नहीं थी और स्वतंत्रता के बाद उनकी हत्या हो गई। वे रहते तो संभवतः लोक-चेतना में लोकतंत्र के अनुकूल विवेक जगा देते।

स्वतंत्रता प्राप्त करना एक बात है और उस एहसास को जीना दूसरी बात है। स्वतंत्र भारत के नागरिकों की मनोदशा आज भी स्वस्थ नहीं है। वे लोकतंत्र में जीते हुए भी अलोकतांत्रिक दुरवस्थाएं भोग रहे हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि लोकतंत्र का स्वीकार प्रवाहपाती मानसिकता में हुआ है। उसके लिए किसी प्रकार की पूर्व-तैयारी नहीं थी।

प्यास थी, पर पानी की व्यवस्था नहीं

लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को स्वीकार करने की मानसिकता के बिना ही भारत आजाद हो गया। इस बात को संभवतः कोई भी स्वीकार न करे, क्योंकि वह समय दासता की बेड़ियों में छटपटाने का समय था। हर एक व्यक्ति का मानस खुले आकाश में उड़ान भरने के लिए आतुर था। वे दिन मैंने भी देखे हैं। बचपन में एक कस्बे में रहने पर भी देशभक्ति से ओत-प्रोत गीत सुने थे। किशोरों के मन में भी परतंत्रता की पीड़ा थी, किंतु उसे तैयारी नहीं कह सकते। यह एक अभीप्सा थी। देश को स्वतंत्र कराने की भावना का वेग था। लोकतंत्र के लिए तैयारी का अर्थ है लोक-प्रशिक्षण। क्या कभी भारतीय जनता को लोकतंत्र के मायने समझाए गए? क्या कभी जनता को विधिवत प्रशिक्षण दिया गया? लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनता का क्या दायित्व है, यह किसी को बताया गया? दायित्व-बोध के साथ दायित्व निर्वाह की प्रेरणा जगाई गई? इन सब प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक हो तो मानना चाहिए कि स्वतंत्रता की प्यास गहरी थी, किंतु पानी पीने-पिलाने की कोई व्यवस्था नहीं थी। व्यवस्था के अभाव में लोकतंत्र की दुरवस्था हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

लोक-प्रशिक्षण के बिंदु

लोकतंत्र का प्राणतत्त्व है लोक-प्रशिक्षण। यह बहुत पहले होना चाहिए था। पर आज तक वह नहीं हो पाया तो दोष किसका? इसके लिए जनता को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, क्योंकि भीड़ का कोई वाद नहीं होता। राष्ट्र के संचालक लोग नीति-निर्धारण करते

हैं और उसे लागू करते हैं। किसी भी वाद के प्रवर्तन से पहले उसका शिक्षा में प्रवेश आवश्यक है। देश के करोड़ों विद्यार्थियों को लोकतंत्र का प्रशिक्षण दिया जाता तो आज घर-घर में लोकतंत्र की सटीक व्याख्या करने वाले और उसके अनुसार जीवन जीने वाले लोग मिल जाते।

आज विद्यार्थियों ने जिस रूप में लोकतंत्र को समझा है, वे उसे केवल वोट बटोरने का साधन मानते हैं। जैसे-तैसे वोट लेना और देना यह विद्यार्थियों की शिक्षा का एक अंग बनता जा रहा है। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों की तो बात ही क्या, इसके लिए विद्यालयों में ही संघर्ष शुरू हो जाते हैं। इस स्थिति से उबरने का सार्थक और सफल उपाय है—लोकतंत्र का समुचित प्रशिक्षण। उस प्रशिक्षण के कुछ बिंदु निम्नलिखित हो सकते हैं—

1. लोक क्या है? उसे कैसा होना चाहिए?
2. तंत्र क्या है? भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक बुनावट के अनुसार तंत्र को कैसे ढालना चाहिए?
3. वोट क्या है? उसका क्या मूल्य है?
4. वोट लेने का अधिकारी कौन है? उसकी क्या अर्हताएं होनी चाहिए?
5. वोट देने का अधिकारी कौन है?
6. चुनाव की प्रक्रिया क्या है और उसके लिए प्रचार-प्रसार की सीमाएं क्या होनी चाहिए?
7. चुनाव के परिणाम को जय-पराजय की भावना से ऊपर उठकर सहज रूप से कैसे स्वीकारा जाए?
8. चुनाव में बहुमत पाने वाले प्रत्याशियों का देश और अपने क्षेत्र की जनता के प्रति क्या दायित्व है?

इस प्रकार के कुछ और बिंदु हो सकते हैं जो चुनाव प्रक्रिया को भय, प्रलोभन, हिंसा, अन्याय आदि दुष्प्रवृत्तियों से मुक्त कर सही अर्थ में लोकतंत्र को प्रभावी बना सकते हैं। अब तक लोक-प्रशिक्षण का उपक्रम प्रारंभ न होने के दुष्परिणाम पूरे देश को भोगने पड़ रहे हैं। 'बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेई' को एक बोधपाठ मानकर इस दिशा में कोई कारगर प्रयत्न किया जाए तो आने वाली पीढ़ियों को ठीक किया जा सकता है।

आग लगने के बाद कुआं खोदना

शिक्षा के माध्यम से लोक-प्रशिक्षण की वकालत करने वाले कह सकते हैं कि इस प्रशिक्षण के अभाव में डॉक्टर, वैज्ञानिक, इंजीनियर आदि कैसे बनते? इस संदर्भ में सापेक्ष दृष्टिकोण से विचार करने की अपेक्षा है। ये लोग प्रशिक्षित होते हैं, पर अपने-अपने पेशे में। यों भी कहा जा सकता है कि इन्हें पैसा बटोरने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जब तक मानवीय मूल्यों का प्रशिक्षण नहीं मिलेगा, समस्या समाहित नहीं होगी। आज मूल्यपरक शिक्षा की बात चल रही है, किंतु उसके साथ प्रायोगिक पक्ष नहीं होने से वह रूपांतरण में सफल नहीं हो पा रही है। अणुव्रत और जीवनविज्ञान के द्वारा हमने इस क्षेत्र में कुछ कार्य करने का प्रयास किया है। जहां-जहां काम हुआ है, वहां कुछ संभावनाएं बढ़ी हैं। नाम ये रहें या और कुछ, मेरा कोई आग्रह नहीं है। आवश्यकता है लोगों को प्रशिक्षित करने की अन्यथा समय हाथ से निकल जाएगा और विश्व के इतने बड़े लोकतांत्रिक देश में जो कुछ होना चाहिए, वह नहीं हो पाएगा।

लोकसभा और कई विधानसभाओं के चुनाव सिर पर खड़े हैं। ऐसे समय में लोकतंत्र के प्रशिक्षण की बात आग लगने के बाद कुआं खोदने जैसी लगती है, क्योंकि दीर्घकालीन योजना के बिना यह काम हो ही नहीं सकता। इस चिंतन के साथ मेरी असहमति नहीं है, किंतु तात्कालिक रूप में कुछ भी न हो, इसका क्या औचित्य है?

भारतीय लोकतंत्र में समय-समय पर संकट के बादल मंडराते रहे हैं। अभी-अभी घटित हवाला-कांड ने तो देश के दिग्गज नेताओं को आरोपों के घेरे में ले लिया। क्या यह कम संकट है? स्थूल रूप में ऐसी वारदातों से भी बचने का प्रयास हो तो सूक्ष्म बातों पर ध्यान केंद्रित हो सकता है।

अच्छे व्यक्तियों की कमी नहीं

कुछ लोगों का चिंतन है कि किसी भी प्रत्याशी को वोट नहीं देना चाहिए। उनकी दृष्टि में कोई भी प्रत्याशी निष्कलंक नहीं है। सबके सब चोर हैं। इस चिंतन के

साथ मेरी सहमति नहीं है। देश में अच्छे व्यक्ति नहीं है, यह सचाई नहीं है। अच्छे व्यक्ति बहुत हैं। हो सकता है, वे भूमिगत हैं। सबके सामने नहीं आते हैं। हो सकता है वे निस्पृह हैं, देश की राजनीति में रस नहीं लेते हैं। हो सकता है वे उदासीन हैं, किसी प्रपंच में फंसना नहीं चाहते हैं। हो सकता है वे भयभीत हैं, भय के कारण बोल नहीं पाते हैं। इसलिए सब लोगों को एक ही बटखरे से तोलना ठीक नहीं है।

लोकतंत्र में वोट मांगने को अवांछनीय नहीं माना जाता। सवाल यह है कि कैसे वोट मांगा जाता है और कैसे दिया जाता है? वोटों के गलियारे से सत्ता के सिंहासन पर पहुंचना बड़ी बात नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कौन व्यक्ति वहां प्रतिष्ठित हो रहा है और किस तरीके से प्रतिष्ठित हो रहा है। जातीय और सांप्रदायिक आधारों पर होने वाले मतदान, मतदाता और उम्मीदवार दोनों की अर्हता पर प्रश्नचिह्न लगा देते हैं।

चुनाव को लेकर जैसा माहौल बना हुआ है, उसमें एक बिंदु पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है। यह ध्यान मतदाताओं को देना है। वे किसी भी व्यक्ति को अपना मत दें, पर जाति, संप्रदाय और पार्टी के आधार पर न दें। वे जिस व्यक्ति को अपना मत दें, वह नशेबाज और धोखेबाज न हो। खुले रूप में आर्थिक असदाचार में लिप्त व्यक्ति जनता का हित-संपादन कैसे करेगा? अपराधों के धरातल से जुड़ा व्यक्ति जनता को न्याय कैसे दे सकेगा? जो व्यक्ति वोट पाने के लिए कुछ भी कर सकता है, वह अपनी कुर्सी को बचाने के लिए कुछ भी करने में संकोच क्यों करेगा? प्रांतीय या केंद्रीय किसी भी स्तर पर होने वाले चुनाव में आर्थिक-प्रलोभन, मादक-द्रव्यों का उपयोग, शस्त्र-शक्ति एवं समाज-कंटकों का सहारा आदि कार्य होते हैं, उससे लोकतंत्र की छवि धूमिल ही रहेगी।

झटके भी उपयोगी

भारत जैसा महान देश आज विभिन्न संस्कृतियों, मजहबों, कौमों और स्वार्थ-प्रेरित राजनीति के आधार पर उभरने वाली पार्टियों में बंटा हुआ है। यह जितना कटु सत्य है, उससे भी बड़ा कटु सत्य है कि मनुष्य भीतर से बंटा हुआ है। उसकी संवेदना के स्रोत सूखते जा रहे हैं। वह अपना मानसिक संतुलन खो रहा है। उसके आकर्षण का सबसे बड़ा केंद्र अर्थ और सत्ता बन गये हैं। ऐसी स्थिति में धांधली को कैसे रोका जाएगा? इस बात को लेकर लोग निराश हो रहे हैं। मैं आज भी निराश नहीं हूं। इन वर्षों में जो जबरदस्त झटके लगे हैं या लग रहे हैं, वे जागरूकता के लिए उपयोगी बन सकते हैं। किसी व्यक्ति के सिर पर गहरी चोट लगे, चोट से उसकी खोपड़ी खुल जाए तो कहा जाता है कि उसका भाग्य खुल गया। देश को लगे झटकों से भी कोई रास्ता प्रशस्त हो जाए तो संसद की गरिमा अक्षुण्ण रह सकती है।

संसद का अपना दायित्व होता है और न्यायपालिका का अपना दायित्व होता है। जब कभी संसद का काम न्यायपालिका को करना पड़े, इससे बड़ा मजाक और क्या होगा? संविधान के निर्माण और राष्ट्र के संचालन की जिम्मेदारी सांसदों की होती है। अब भी संसद सही अर्थ में संसद बनी रहे और उसमें गलत व्यक्तियों का प्रवेश न हो तो भूल का सुधार संभव है। यह तभी हो सकेगा जब देश के वोटर लोकतांत्रिक आस्थावाले चरित्रशील, कर्मशील और चिंतनशील व्यक्तियों की खोज कर उनसे अनुरोध करेंगे कि वे उनके वोट का उपयोग करें।

लोकसभा की पीठ पर

अणुव्रत का एक कार्यक्रम है चुनाव-शुद्धि। हमारा एक ही सपना है कि देश की प्रतिमा सुंदर और साफ-सुथरी हो। कुछ व्यक्तियों ने मुझसे कहा—'अच्छे अच्छे अणुव्रतियों को चुनाव में खड़ा किया जाए। यह काम हमारा नहीं है। हमारी अपनी सीमाएं हैं। हमें न तो देश की सक्रिय राजनीति से जुड़ना है और न किसी दल-विशेष या व्यक्ति-विशेष को महत्त्व देना है। देश की जनता से हमारा यही आह्वान है कि लोकतंत्र की पवित्रता को सुरक्षित रखने के लिए वह पूरी तरह से जागरूक रहे। लोकसभा जैसी पवित्र पीठ पर गलत तत्त्व प्रतिष्ठित हो गए तो उसकी पवित्रता कैसे सुरक्षित रह पाएगी? ❐

समय के साथ बदलना सीखें

आचार्य तुलसी

मनुष्य इस सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है। उसके पास ज्ञान है, समझ है, सोचने की शक्ति है, अभिव्यक्ति की क्षमता है और कार्य-संपादन का कौशल है। वह अपने ज्ञान और समझ के बल पर लक्ष्य का निर्धारण करता है। लक्ष्य तक पहुंचने के लिए साधन सामग्री जुटाने का दायित्व भी उसी पर रहता है। अपने दायित्व का अनुभव कर वह पुरुषार्थ करता है और आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ता है। कभी वह निर्बाध गति से चलता रहता है तो कभी उसकी गति में व्यवधान भी आता है। कभी वह थकान के कारण कुछ क्षण विश्राम करने के लिए बैठता है तो कभी थकने के बावजूद उसे कोई रोक नहीं सकता। लक्ष्य सामने हैं, मन में उत्साह है, गति में विश्वास है, फिर भी लक्ष्य तक पहुंचने में कुछ समय लग जाता है। उर्वर धरती, अच्छी खाद, उपयुक्त वर्षा, श्रेष्ठ बीज, खुली धूप, मुक्त हवा और माली की सार-संभाल। इतना सब कुछ होने पर भी बीज से बरगद बनने की यात्रा क्षण भर में घटित नहीं होती। चक्रवर्ती का रत्न प्रातः फसल बोता है और सांझ को काट लेता है। यह एक दिव्य घटना है। इसमें भी चार प्रहर का समय लग जाता है। समय के अभाव में कोई भी काम सिद्ध नहीं होता, इसलिए समय के प्रबंधन पर सबसे अधिक ध्यान देने की अपेक्षा है।

समय प्रतीक्षा नहीं करता

समय नदी का प्रवाह है। वह कभी रुकता नहीं, बहता रहता है। उसे बांधकर नहीं रखा जा सकता, उसका उपयोग किया जा सकता है। समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। उसका समुचित उपयोग वही कर सकता है, जो उसके प्रबंधन के नियमों को जानता है और उसके अनुसार काम करता है। यही काम आज आदमी के लिए सबसे कठिन हो रहा है। उसे प्रतिदिन चौबीस घंटे का समय मिलता है। दिन छोटे-बड़े हो सकते हैं। रातें भी छोटी-बड़ी होती है, पर दोनों को मिला देने पर पूरे चौबीस घंटे हो जाते हैं। प्रत्येक आदमी का दिन चौबीस घंटे का खत लिखाकर लाता है। कुछ लोगों के जीवन में समय बरकत करता है। वे जितने काम करना चाहते हैं, उतने काम कर लेने के बाद भी उनके पास समय बच जाता है। उन्हें कभी अनुभव नहीं होता कि उनके पास समय नहीं है। कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जिसके पास कभी किसी काम के लिए समय नहीं मिलता। वे ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके पास अपने लिए भी समय नहीं रहता।

जमाने की भागदौड़ में वे आंख मूंदकर हिस्सा ले रहे हैं। उन्हें यह भी पता नहीं है कि किस समय कौन-सा काम उनके लिए आवश्यक है। इस कोटि के व्यक्ति समय का मूल्यांकन नहीं कर सकते।

महावीर की चेतावनी

भगवान महावीर इस अवसर्पिणी काल के अंतिम धर्म प्रवर्तक थे। वे किसी संप्रदाय के नहीं, धर्म के प्रवर्तक थे। किसी रूढ़ धर्म के नहीं, जीवंत धर्म के प्रवर्तक थे। उन्होंने धर्म की आराधना पर जितना बल दिया उससे अधिक बल समय की साधना पर दिया। उत्तराध्ययन का एक पूरा अध्ययन समय की परिधि में निर्मित हुआ है। भगवान महावीर अपने प्रथम शिष्य गणधर गौतम को संबोधित कर कहते हैं–'समयं गोयम! मा पमायए' –गौतम! तुम एक क्षण के लिए भी प्रमाद मत करो।

गुरु की यह एक छोटी सी सीख गौतम के जीवन की अनमोल धरोहर बन गई। प्रश्न होता है कि महावीर ने समय को इतना मूल्य क्यों दिया? उन्होंने गौतम का नाम लेकर यह बात क्यों कही? महावीर आप्त पुरुष थे। उनका हर शब्द विशेष अर्थ रखता था। गौतम उनके प्रिय शिष्य थे। महावीर के मन में प्रियता-अप्रियता की कोई भेदरेखा नहीं थी, पर गौतम इसे मिटा नहीं पाए थे। उनके मन में महावीर के प्रति प्रियता के भाव थे। उनका यह रागात्मक अनुबंध टूटे, इस दृष्टि से महावीर ने उनको उद्‌बोधन दिया। उन्होंने कहा–यह मनुष्य के जीवन की उपलब्धि हुई है।

स्थावर जीवनिकायों की पांच घाटियां एक-एक में असंख्य और अनंत कालवास करने के बाद प्राणी उन घाटियों से बाहर निकलता है। तीन घाटियां विकलेंद्रिय जीवनिकायों की हैं। उनमें भी लंबे समय तक रहना पड़ता है। नौवीं घाटी तिर्यंच पंचेंद्रिय की है। इस घाटी को पार करने के बाद दुर्लभ मनुष्य का जीवन प्राप्त होता है। इस जीवन को यों ही खो दिया तो पश्चात्ताप के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। इसलिए समय का मूल्यांकन कर मनुष्य जीवन को सार्थक बनाना जरूरी है।

अंकन समय का

मैंने उत्तराध्ययन आगम को पढ़ा। गौतम को संबोधन कर कहे गए अध्ययन को पढ़ा। समय के मूल्य को समझा और प्रयास किया कि यह बात औरों को भी समझाएंगे। इस दृष्टि से मैंने एक गीत लिखा–

सूक्त खणं जाणाहि न भूलें,
अभिनव आयामों को छूलें,
तुलसी के उद्‌गार, समय का अंकन हो।।
जागे शुभ संस्कार, समय का अंकन हो।।

जो लोग क्षण के महत्त्व को समझते हैं , वे अपने जीवन में नए आयाम खोल सकते हैं। मैं यह बात अपने अनुभव के आधार पर कहता हूं। शुभ संस्कार जगाने के लिए समय का अंकन आवश्यक समझता हूं। समय का अंकन वही व्यक्ति कर सकता है, जो उसका मूल्य समझता है। समय के अभाव में अंकन या उपयोग की तो बात ही क्या, उसका दुरुपयोग किया जा सकता है। अतः इस दिशा में सावधान रहना चाहिए।

बचपन के काम बुढ़ापे में नहीं

लौकिक और लोकोत्तर दोनों संदर्भों में समय का उपयोग नहीं करने वाले बरबाद हो जाते हैं और उसका सही उपयोग करने वाले सफल हो जाते हैं। इस दृष्टि से समय का हिसाब-किताब रखना आवश्यक है। यह बोध बचपन में हो जाए तो जीवन में संभावनाओं की नई दिशाएं खुल सकती हैं। मैं बहुत बार सोचता हूं कि बालवय और किशोर वय में समय का मूल्य समझ पाता तो आज न जाने कहां पहुंच जाता।

कभी-कभी मन में आता है कि बचपन को यों ही नहीं खोया, फिर भी जितना उपयोग होना चाहिए था, नहीं हो पाया। समय के बारे में एक बात और ज्ञातव्य है। वह यह है कि उपयुक्त समय पर ही काम हो सकता है। जो काम बचपन में हो सकता है, वह बुढ़ापे में कैसे हो सकता है? कुछ लोग कह देते हैं कि बच्चों को दीक्षा नहीं देनी चाहिए। किसी दृष्टि से उनका कथन ठीक हो

सकता है, पर वे इस बात को क्यों भूल जाते हैं कि बचपन में जो संस्कार आ सकते हैं, वे वयस्क होने के बाद नहीं आ सकते। शिक्षा का विकास भी बचपन में ही अधिक संभव है। सद्गुणों के जो बीज बचपन की उर्वर भूमि में बोए जा सकते हैं, प्रौढ़ता की कठोर धरती पर कैसे बोए जाएंगे?

समय के साथ बदलना सीखें

समय का मूल्य समय पर ही होता है। एक समय ऐसा होता है, जब व्यक्ति के पास किसी से बात करने के लिए समय नहीं रहता। मिलने वाले लोगों की लाइन लगी रहती है। अत्यंत आवश्यक होने पर भी उनको समय नहीं दिया जा सकता। जीवन के एक पड़ाव पर व्यक्ति कार्य से निवृत्त हो जाता है। उस समय उसके पास पूरा समय होता है, किंतु दूसरा कोई वहां आता नहीं, बैठता नहीं और बात करता नहीं। यह स्थिति उसके लिए असह्य होती है, पर इसे बदलने का कोई उपाय नहीं होता।

अमेरिका के राष्ट्रपति निक्सन ने अपने जीवन की इसी त्रासदी की चर्चा करते हुए कहा–'जब मैं राष्ट्रपति था, बहुत लोग मुझसे मिलना चाहते थे। मैं उन्हें समय नहीं दे पाता था। आज मैं दिन भर खाली बैठा रहता हूं, पर कोई व्यक्ति मुझसे मिलने नहीं आता।'

ऐसा ही एक प्रसंग प्रभूदयालजी का है। वे दिल्ली में थे। उनके घर में लोगों की भीड़ लगी रहती थी। वे कोई नेता नहीं थे। सक्रिय राजनीति में भी नहीं थे। फिर भी उनका प्रभाव था। लोग उनके पास आते और अपनी समस्याओं के समाधान में उनका सहयोग लेते। एक समय आया, जब डाबड़ीवालजी अस्वस्थ हो गए। वृद्ध हो गए। उनको पक्षाघात हो गया। लोगों का आना-जाना बंद हो गया। उनको खालीपन का अनुभव होने लगा। वे इस स्थिति से दुःखी हो गए।

हम दिल्ली से रवाना हो रहे थे। हमने उनको एक मंत्र पकड़ा दिया। दिन भर मंत्र का जाप। जीवन का खालीपन दूर हो गया। उसके बाद वे प्रसन्नता से भर गए। इन प्रसंगों की चर्चा का एक ही उद्देश्य है कि मनुष्य का दृष्टिकोण बदले। उसके सामने जीवन भर एक ही स्थिति रहे, एक ही काम रहे, यह सोचना ही गलत है। समय के अनुसार कार्य परिवर्तन के सिद्धांत को मान्य करने वाला व्यक्ति कभी निष्क्रिय नहीं हो सकता।

सूत्र समय-प्रबंधन का

भारतीय लोगों की एक दुर्बलता है समय की अनियमितता। इसी कारण उपहास के रूप में कहा जाता है–इंडियन टाइम। जब कभी भारतीय समय के बारे में यह व्यंग्योक्ति सुनता हूं, संकोच का अनुभव होता है। पाश्चात्य लोग टाइम मैनेजमेंट के मामले में बहुत जागरूक हैं। वे समय की पूरी पाबंदी रखते हैं। जिस समय उन्हें जो काम करना होता है, उसी समय करते हैं। विदेशी लोग प्रेक्षाध्यान का प्रशिक्षण लेने यहां आते हैं। उन्हें जितने दिन रहना होता है, पूरी दिनचर्या निर्धारित कर लेते हैं। इस क्रम से वे अपने समय का पूरा उपयोग कर सकते हैं।

इसीलिए मैं बहुत बार कहता हूं कि समय का प्रबंधन सीखना है तो पश्चिम के लोगों से सीखना चाहिए। समय की अनियमितता से मनुष्य की जीवनशैली अव्यवस्थित हो जाती है। न सोने का समय निश्चित और न जागने का। ऐसी स्थिति में जागरण और शयन के बीच होनेवाला कार्य व्यवस्थित नहीं हो पाता।

कुछ लोग कहते हैं कि हम देरी से सोते हैं, इसलिए देरी से उठते हैं। हमारी दैनिक चर्या इसी रूप में चलती है। ऐसा कहने वाले लोग अपनी दृष्टि से व्यवस्थित हो सकते हैं, पर ब्रह्ममुहूर्त में उठकर करने के काम वे कब करेंगे? कैसे करेंगे? जिन लोगों को अपने जीवन और स्वास्थ्य की थोड़ी भी चिंता है, वे समय-प्रबंधन के सूत्र को अपने हाथ में रखें और धन्यता का अनुभव करें। ❑

तृष्णा का अंत कहां?

साध्वी डॉ. उज्ज्वलयशा

इन्द्र के मन में मनुष्य की परीक्षा करने का कौतूहल पैदा हुआ। उसने सिद्धयोगी का रूप बनाया और बाजार में बैठ गया। लोगों की भीड़ जमा होने लगी। कोई व्यक्ति काले से गोरा बना, किसी ने अपने गहने बदलवाए, किसी ने धन, मकान की मांग की। इन्द्र ने सबकी इच्छाएं पूरी की। शहर का केवल एक संन्यासी वहां नहीं आया। इन्द्र को जब पता लगा तो वह संन्यासी के पास आया और बोला–'बाबा! तुम्हारा शरीर जर्जर है, कुरूप है। तुम्हारे पास में रहने के लिए झोंपड़ी भी नहीं है। मैं कल जा रहा हूं, आप भी कुछ बदलवा लें।' संन्यासी बोला–'इस दुनिया में मनुष्य जीवन से बढ़कर कोई सुंदर चीज नहीं, और वह मुझे प्राप्त है। आत्म-संतोष से बढ़कर कोई सुंदर चीज नहीं, वह भी मुझे प्राप्त है, इसलिए मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।'

मनुष्य जीवन का लक्ष्य है वीतरागता। इसकी ओर जितना प्रस्थान होता है उतनी ही जागरूकता बढ़ती है। उसकी निष्पत्ति है कषाय-विजय। दाल, चीनी, आटा होने पर भी यदि अग्नि नहीं होती तो भोजन तैयार नहीं हो सकता। जीवन में सरलता, निश्छलता, जागरूकता होने पर भी कषाय का प्रवेश हो तो जीवन-दिशा दूसरी ओर मुड़ जाती है और व्यक्ति क्रोधी, अभिमानी, मायावी और लोभी बन जाता है।

सफेद कपड़े रंगने पर वे रंगीन हो जाते हैं। चेतना में रंग नहीं, पर कषाय उसे रंगने का प्रयत्न करते हैं। जब चेतना रंगी जाती है तो उसके अलग-अलग रंग होने के कारण व्यक्ति का आभामंडल भी अलग-अलग रंग का हो जाता है। ये रंग औपाधिक हैं। नरक से स्वर्ग तक सभी जीवों की चेतना कषाय के रंग से रंगी होती है। इस कारण व्यक्ति के भीतर अलग-अलग भावना पैदा होती है। उन भावनाओं में एक भावना है लोभ की, तृष्णा की, धन संचय करने की, परिग्रह की।

मनुष्य मच्छर से ज्यादा खतरनाक है। दोनों काटते हैं। मच्छर काटता है तो सिर्फ खून पीता है, पर जब मनुष्य काटता है तो खानदान तक पी जाता है। मच्छर-मच्छर को कभी नहीं काटता, लेकिन मनुष्य मनुष्य को सदियों से काटता आ रहा है–धन के लिए। उसके भीतर लोभ की भावना इस कदर हो जाती है कि वह उसे तृष्णा के अनंत सागर में भटकाकर पाप-कार्य करने के लिए मजबूर कर देती है। लोभी व्यक्ति पल-पल धन की रटन लगाता है और अधिक से अधिक पौद्गलिक वस्तुओं के संग्रह में जुट जाता है। उसे रोटी की भूख नहीं, धन की भूख होती है। उसके लिए पैसा ही परमेश्वर है। पैसा ही मां-बाप है। पैसे के लिए वह क्या-क्या दुष्कर्म नहीं करता। कहा भी है–

लोभ बनाता मनुज को, निर्दयी, दैत्याकार।
हाय! बन्धु भी बन्धु का, करता है संहार।।

आज व्यक्ति का सारा समय धन-अर्जन में बीतता है। इसके लिए वह न रात देखता है, न दिन, न भूख देखता है न प्यास, न गर्मी देखता है न सर्दी, न वर्षा। उसका केवल एक ही लक्ष्य है कि प्रचुर मात्रा में धन का संग्रह हो। इसके लिए वह अपने ईमान व शरीर को भी बेच देता है। मां-बाप की झूठी कसमें खाता है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र में परिग्रह नामक अधर्म के तीस पर्यायवाची नाम बताए गए हैं, उनमें कुछ नाम हैं–संचय, निधान, महेच्छा, चय, उपचय, लोभात्मा, अनर्थ, महर्धिका (महती आकांक्षा), कलिकरण्ड (कलह का पिटारा), तृष्णा आदि।

प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा गया है कि परिग्रह एक वृक्ष है। अपरिमित एवं अनंत तृष्णा रूप महती इच्छा अक्षय और अशुभ फल वाले इस वृक्ष की मूल है। लोभ, कलह, क्रोधादि कषाय इसके महास्कंध हैं। चिंता, मानसिक संताप आदि की अधिकता से वह विस्तीर्ण शाखाओं वाला है। वृद्धि, रस और साता रूप गौरव शाखाओं के अग्र भाग हैं। निकृति–दूसरों को ठगने के लिए की जाने वाली वंचना वृक्ष की त्वचा–छाल, पत्र हैं। काम-भोग वृक्ष के पुष्प और फल हैं। शारीरिक श्रम, मानसिक खेद, कलह इसका कम्पायमान अग्रशिखर-ऊपरी भाग है। परिग्रह राजा-महाराजाओं द्वारा सम्मानित है, *अधिकांश लोगों का अत्यंत प्यारा है और* मोक्ष के निर्लोभता रूप मार्ग के लिए अर्गला के समान है अर्थात् मोक्ष प्राप्ति में परिग्रह बाधक है।

भगवान महावीर ने परिग्रह को, तृष्णा को क्लेशों का मूल कहा है। तृष्णा के वशवर्ती जीव अशांत है, पीड़ित है। तृष्णा का अंत नहीं है। जैसे अग्नि में घी डालने पर वह प्रज्वलित होती है वैसे ही परिग्रह की तृषाग्नि प्रदीप्त होती रहती है। सत्ता का मोह मनुष्य को विभ्रांत बना देता है। वह तो मम्मण सेठ की भांति नंग-धड़ंग रह कर भी हीरे जड़ित बैल की आकांक्षा में अपना जीवन व्यतीत कर देता है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि **'इच्छा हु आगाससमा अणंतिया'**–इच्छा आकाश की तरह अनंत है।

पाश्चात्य विचारक ने लिखा है कि 'सोने के ढेर के बढ़ने के साथ लोभ भी बढ़ता है।' लोभ का प्रसंग आने पर व्यक्ति असत्य का सहारा लेता है। रूस में कहावत प्रसिद्ध है कि 'जब पैसा बोलता है, तब सत्य मौन हो जाता है।'

पदार्थ पदार्थ है, चेतना चेतना होती है। दोनों स्वतंत्र हैं। पदार्थ को जब चेतना पकड़ लेती है तब लोभ की वृत्ति जागृत होती है। अविरति का धागा उस वृत्ति को बढ़ावा देता है। पदार्थ पकड़ता नहीं, पकड़ती है आकांक्षा। अविरति आकांक्षा को, इच्छा को जन्म देती है। स्वास्थ्य के लिए भूख लगना जरूरी है। यही भूख जब भस्मक व्याधि बन जाती है तब खतरनाक हो जाती है। इसी प्रकार सामाजिक प्राणी में इच्छा का विकास जरूरी है, पर इच्छा भस्मक न बने, जिसकी पूर्ति के लिए अनैतिक तरीकों से धन अर्जन किया जाता है, गरीबों का शोषण किया जाता है।

अर्थ संग्रह करने के तीन कारण हैं– पहला प्रारंभ में व्यक्ति आवश्यकता पूर्ति के लिए अर्थार्जन करता है। दूसरा बाद में समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाने के लिए और तीसरा मन भरने के लिए, अर्थार्जन करता है। व्यक्ति का मन कभी नहीं भरता, क्योंकि तृष्णा तृष्णा को जन्म देती है।

एक निर्लोभी योगी था। सभी क्षेत्रों में उसका अच्छा प्रभाव था। एक दिन एक धनाढ्य ने योगी के चरणों में एक स्वर्ण मुद्रा चढ़ाई। योगी ने अपने शिष्य से कहा कि 'यह मुद्रा हमें नहीं चाहिए। तुम इस मुद्रा को ले जाओ और किसी भिखारी को दे दो।' शिष्य चला गया। वह इधर-उधर घूमकर भिखारी की खोज कर रहा था। इतने में उसने सैनिकों से घिरे हुए राजा को आते हुए देखा। जानकारी के अनुसार कि राजा शत्रु का राज्य छीनने जा रहा है, उसने मुद्रा राजा पर फेंक दी, क्योंकि उसने सोचा–'यह राजा इतना संपत्तिशाली है, फिर भी इसकी तृष्णा शांत नहीं हुई, वास्तव में यह सच्चा भिखारी है। राजा ने शिष्य से पूछा–'तुमने मुझ पर यह मुद्रा क्यों

फेंकी?' शिष्य ने जवाब दिया–'राजन! गुरु के आदेश से।' राजा–'तेरा गुरु कहां है?'–'आश्रम में'–शिष्य बोला। राजा योगी के पास पहुंचा और बोला–'तुम्हारे शिष्य ने मुझे भिखारी समझा है, इसलिए आपके आदेश से इसने मुझ पर स्वर्णमुद्रा फेंकी।' समताशील योगी बोला–'राजन! अभी तुम्हारे राज्य की कितनी आय है?' राजा–'लगभग सात करोड़ रुपये'। योगी–'राजन! इतनी आय होते हुए भी तुम्हारी तृष्णा शांत नहीं हुई। तुम भिखारियों की भांति भटकते हो, दूसरों के राज्यों को हड़पना चाहते हो। क्या आप भिखारी नहीं हैं?' राजा का क्रोध शांत हो गया। वह करबद्ध बोला–'महात्मन्! मैं सच्चा भिखारी हूं, क्योंकि मेरे हृदय में तृष्णा का पार नहीं है।'

विश्व में जितने भी युद्ध हुए हैं, वे तीन कारणों से हुए हैं–जर (धन), जोरू (स्त्री) और जमीन। जैन इतिहास में उल्लेख मिलता है कि राजा कूणिक ने हल-विहल्ल कुमार के हार-हाथी के लिए अपने नाना चेटक पर आक्रमण किया। उस युद्ध में एक करोड़, अस्सी लाख योद्धा मारे गए। भारतीय इतिहास के अनुसार सम्राट औरंगजेब ने राजगद्दी प्राप्त करने के लिए अपने पिता शाहजहां को आगरे के किले में बंद कर दिया और जो भाई राज्य के हकदार थे, उन्हें मौत के घाट उतरवा दिया।

बड़े-बड़े राजा-महाराजा, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि के भीतर जब असंतोष और तृष्णा की अग्नि प्रज्वलित होती है तो वे परकीय धन में वृद्धि के कारण अपनी सबल सेना को युद्ध में झोंक देते हैं। उन्हें यह विवेक नहीं रहता कि मात्र अपनी प्रगाढ़ आसक्ति की पूर्ति के लिए वे कितने योद्धाओं का संहार कर रहे हैं, कितने आश्रितजनों को भयानक संकट में डाल रहे हैं। वे यह भी नहीं समझ पाते कि परकीय धन संपदा को लूट लेने के पश्चात् भी आसक्ति की आग बुझने वाली नहीं है। उनके विवेक-नेत्र बंद हो जाते हैं। लोभ उन्हें अंधा बना देता है।

प्रकृति मौसम के अनुसार श्रृंगार करती है और बदलते मौसम में अपना संवरण कर लेती है। वह प्रसाधनों का संग्रह नहीं करती, इसलिए वह सदा मनमोहक–दूसरों के मन को आकर्षित करती रहती है। सरिता में जो कलकल का निनाद, स्वच्छता और सतत प्रवाह दिखाई देता है उसका हेतु है उसकी गतिशीलता और असंग्रह की भावना। लोभी व्यक्ति लेता ही लेता है देता नहीं। उसका स्वभाव प्रकृति के विपरीत है। सूर्य की भीषण गर्मी तालाब, नदी आदि के पानी को सोखकर समय आने पर बादलों के रूप में वर्षा कर उन्हें पुनः जल से भर देती है। लोभी व्यक्ति ऐसा नहीं करता। वह जीवन भर ग्रहण-करता है, रक्षण करता है, पर खर्च करने पर कष्ट की अनुभूति करता है।

लोभी मानव लोक का, बन जाता है दास।
है न परिग्रह सम कहीं, और दूसरा पाश।।

अनेकानेक कार्य जीवनपर्यंत निरंतर करते रहने पर भी प्राणियों की धन से तृप्ति नहीं होती। जो धन परिग्रह, अधिकाधिक तृष्णा, लालसा, आसक्ति और असंतुष्टि की वृद्धि करने वाला है, उससे तृप्ति अथवा संतुष्टि कैसे प्राप्त हो सकती है? जीवनपर्यंत उसे बढ़ाने के लिए जुटे रहने पर भी जीवन का अंत आ जाता है, परंतु लालसा का अंत नहीं आता। जिनकी विवेकबुद्धि जाग्रत हो जाती है, जो यथार्थ वस्तु स्वरूप को समझ जाते हैं, परिग्रह की निस्सारता का भान जिन्हें हो जाता है और जो निश्चय कर लेते हैं कि परिग्रह सुख का नहीं, दुःख का कारण है, यह आत्मा की विशुद्धि का नहीं, मलिनता का कारण है, इससे आत्मा का उत्थान नहीं, पतन होता है, वे महान पुरुष परिग्रह के पिशाच से अवश्य मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

लोभ को शांत करने का एकमात्र उपाय है–शौच-निर्लोभता, मुक्ति-धर्म का आचरण। जो महामानव अपने मानस में संतोषवृत्ति को परिपुष्ट कर लेते हैं, अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण कर लेते हैं, वे ही तृष्णा व लोभ-लालसा से विरत हो जाते हैं। ❐

आधुनिक संदर्भ में भगवान महावीर

महेश नाहटा

भगवान महावीर एक महान क्रांतिकारी युगद्रष्टा महापुरुष थे। उन्होंने अपने समय में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में व्याप्त विभिन्न दोषों, विषमताओं को दूर करने का पूर्णतः प्रयत्न किया। उन्होंने जीवन के सभी क्षेत्रों में एक क्रांतिकारी जीवन दर्शन का प्ररूपण किया। स्वयं राजघराने में जन्म लेकर राजसी ऐश्वर्य का पूर्णतः परित्याग कर संयम, त्याग और तपस्या में जीवन व्यतीत करते हुए व्यक्ति और समाज को विभिन्न प्रकार के आडंबरों की भूल-भुलैया से निकाल कर धर्म और नैतिकता का पाठ पढ़ाया। अहिंसा और समता का दिशा-निर्देश ही नहीं किया, वरन स्वयं उस मार्ग पर चलते हुए कोटि-कोटि संतप्त और दिग्भ्रमित मानवों का मार्ग प्रशस्त किया।

तत्कालीन समय में धर्म के नाम पर छुआछूत और हिंसा होती थी। समाज के कुछ लोग यह मानते थे कि उन्हें ईश्वर ने ही बड़ा बनाया है और शूद्रों को निम्न। धर्म के नाम पर यज्ञ में जीवों की बलि दी जाती थी और कहा जाता था कि यह हिंसा नहीं बल्कि देव-पूजा है। लोग मानते थे कि 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' अर्थात् ऐसी हिंसा हिंसा नहीं कहलाती। पंडित लोग आचरण की अपेक्षा शास्त्रार्थ के माध्यम से अपने पांडित्य का प्रदर्शन करते थे। समाज में चारों ओर असमानता, विषमता, ऊंच-नीच की भावना और देवी-देवताओं की मान्यताएं फैली हुई थीं। सर्वत्र अराजकता फैली थी। ऐसे अंधकारमय और अशांत समय में युगपुरुष भगवान महावीर का वैशाली गणराज्य के कुण्डपुर ग्राम में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला के यहां जन्म हुआ।

बाल्यावस्था में उन्हें वर्धमान कहा जाता था, आगे चलकर वे महावीर के नाम से पुकारे जाने लगे। महाबलशाली महावीर ने पैर के एक अंगूठे से मेरु पर्वत को हिला कर 'पूत के पांव पालने में पहचाने जाते हैं' कहावत को सार्थक किया।

महावीर के राजकुमारोचित बाल्यजीवन व्यतीत करने के उपरांत अनुपम सुंदरी यशोदा के साथ उनका विवाह हुआ,

पर उनका मन संसार के भोग-विलास के आकर्षणों से और गृहस्थ जीवन से विरक्त हो गया। युगपुरुष धरती पर अपने लिए नहीं आते। भगवान महावीर के मन में लोक कल्याण की भावना प्रारंभ से ही प्रबल थी। भोग की अपेक्षा साधना और योग, परिग्रह की अपेक्षा अपरिग्रह तथा सांसारिक जीवन की अपेक्षा त्यागमय मुनि जीवन की ओर वे आकर्षित हुए, अतः तीस वर्ष की युवावस्था में उन्होंने सबकुछ छोड़ कर साढ़े बारह वर्ष तक कठोर तपस्या की। अपनी अप्रतिम साधना से वैशाख शुक्ला दशमी के दिन—ऋजुमालिका नदी के तट पर संपूर्ण ज्ञान व सर्वज्ञत्व की प्राप्ति कर वे सर्वज्ञ तीर्थंकर, अर्हत, परमात्मा, जिनेन्द्र बन गए।

सर्वज्ञता प्राप्ति के उपरांत भगवान महावीर एक स्थान से दूसरे स्थान और एक जनपद से दूसरे जनपद में विहार करते हुए शिक्षित और अशिक्षित, बालक और वृद्ध, स्त्री और पुरुष, धनवान और गरीब सभी वर्ग में धर्म व सदाचार की अलख जगाने लगे। बड़े-बड़े श्रेष्ठी, विद्वान और राजा उनके अनुयायी होने लगे। सर्व सामान्य के लिए ग्राह्य अर्धमागधी लोकभाषा में उन्होंने उपदेश दिए। थोड़े ही समय में उनकी ख्याति दिग्दिगंत में फैलने लगी। मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी और देवता भी उनकी शरण में आने लगे।

महावीर के धर्म में वर्ग, जाति, लिंग आदि का कोई भेद नहीं था। वे मानते थे कि सभी मनुष्यों में अनंत बल, अनंत वीर्य, अनंत दर्शन और अनंत ऐश्वर्य से समन्वित नित्य और अविनाशी आत्मा निवास करती है। कोई छोटा और कोई बड़ा नहीं है। भगवान महावीर के सिद्धांत केवल भारतीय संस्कृति के ही नहीं अपितु विश्व संस्कृति और ज्ञान साहित्य की अनुपम देन है। उनका अनेकांतवाद का सिद्धांत ज्ञान के क्षेत्र में सत्य तक पहुंचने का अद्वितीय मार्ग है। उन्होंने बताया कि तत्त्व में अनेक गुण एक साथ विद्यमान हैं। वस्तु में दो विरोधीगुण भी एक साथ रह सकते हैं। परंतु व्यवहार में हमें तत्त्व के सभी आयामों का भी ज्ञान होना एक साथ संभव नहीं, हमें यह मानकर चलना चाहिए कि हमारा ही दृष्टिकोण एक मात्र सत्य नहीं है। उसी वस्तु में अन्य दृष्टिकोण भी सत्य है।

अनेकांतवाद का व्यावहारिक रूप स्याद्वाद है जो बताता है कि कोई भी दृष्टि सर्वकालीन और सार्वदेशिक सत्य नहीं है वरन् प्रत्येक निर्णय देश, काल, द्रव्य आदि के दृष्टिकोण से है। यदि स्याद्वाद व अनेकांतवाद के सिद्धांत को मानकर चला जाए तो सारे मत-मतांतरों के झगड़े और विवाद शांत हो जाएंगे। जैनमत यह स्वीकार करता है कि सभी मतों में आंशिक सत्यता है।

भगवान महावीर तीर्थंकर थे। उनका जीवन दूसरों के लिए प्रेरणा स्रोत रहा है। धर्म के नाम पर जितनी धार्मिक क्रियाएं हिंसा, शोषण, दमन, विषमता आदि व्याप्त थी, सब पर उन्होंने प्रहार किया। नारियों और निम्न वर्ग के लोगों को उन्होंने ससम्मान धर्मसंघ में स्थान प्रदान किया।

भगवान महावीर का जीवन मानवीय मूल्यों की स्थापना की एक अनवरत और शाश्वत ज्योति की कहानी है। वे मानते हैं कि जीव को समान सुख और दुःख की अनुभूति होती है, अतः मन-वचन-कर्म से आत्मवत व्यवहार करते हुए किसी प्राणी को कष्ट नहीं देना चाहिए। उन्होंने बताया कि धर्म आराधना में जाति, वर्ग, लिंग आदि के भेद के लिए कोई स्थान नहीं है। उन्होंने सांप्रदायिकता और जातीयता को दूर किया। 'अहिंसा परमो धर्मः' जैसे महान मूल्य की स्थापना कर भगवान महावीर ने कहा कि सदाचार और नैतिकता का जीवन व्यतीत करते हुए व्यक्ति स्वयं ईश्वरत्व को प्राप्त कर सकता है। भगवान महावीर ने उन सभी अत्याचारों और अनाचारों, हिंसा-लूटपाट, दमन और शोषण, असमानता और विषमता के विरुद्ध समता धर्म का शंखनाद किया।

अहिंसा मानव जाति को हिंसा से मुक्त करती है। वैर, वैमनस्य-द्वेष, कलह, घृणा, ईर्ष्या-डाह,

दुःसंकल्प, दुर्वचन, क्रोध, अभिमान, दंभ, लोभ-लालच, शोषण, दमन आदि जितनी भी व्यक्ति और समाज की ध्वंसमूलक विकृतियां हैं, सब हिंसा का ही रूप हैं। मानव मन हिंसा के उक्त विविध प्रहारों से निरंतर घायल होता आ रहा है। मानव ने वैर का प्रतिकार वैर से, दमन का प्रतिकार दमन से करना चाहा, अर्थात् हिंसा का प्रतिकार हिंसा से करना चाहा लेकिन भगवान महावीर ने कहा था कि 'क्रोध को क्रोध से नहीं, क्षमा से जीतो। अहंकार को अहंकार से नहीं, विनय एवं नम्रता से जीतो। दंभ को दंभ से नहीं, सरलता और निश्छलता से जीतो। लोभ को लोभ से नहीं, संतोष से जीतो। उदारता से जीतो।'

इसी प्रकार भय को अभय से, घृणा को प्रेम से जीतना चाहिए और विजय की यह सात्विक प्रक्रिया ही अहिंसा है। अहिंसा प्रकाश की अंधकार पर, प्रेम की घृणा पर, सद्भाव की वैर पर, अच्छाई की बुराई पर विजय का अमोघ उद्घोष है।

भगवान महावीर ने अहिंसा का केवल आदर्श ही नहीं दिया, अपने जीवन में उतार कर उसकी शत-प्रतिशत यथार्थता भी प्रमाणित की। उन्होंने हिंसा के सिद्धांत और व्यवहार को एकमेक करके दिखा दिया। उनका जीवन उनके अहिंसा योग के महान आदर्श का ही एक जीता-जागता मूर्तिमान परिदर्शन था। विरोधी से विरोधी के प्रति भी उनके मन में कोई घृणा नहीं थी, कोई द्वेष नहीं था। वे उत्पीड़क एवं घातक विरोधी के प्रति भी मंगल कल्याण की पवित्र भावना ही रखते रहे। संगम जैसे भयंकर उपसर्ग देने वाले व्यक्ति के लिए भी उनकी आंखें करुणा से गीली हो आई थीं। वस्तुतः उनका कोई विरोधी था ही नहीं। उनका कहना था कि विश्व के सभी प्राणियों के साथ मेरी मैत्री है, मेरा किसी के साथ कुछ भी वैर नहीं है—'**मित्ती मे सव्वभुएसु, वेरं मज्झ न केणई।**'

भगवान महावीर का यह मैत्रीभावमूलक अहिंसाभाव इस चरम कोटि पर पहुंच गया था कि उन के श्रीचरणों में सिंह और मृग, नकुल और सर्प जैसे प्राणी भी अपना जन्मजात वैर भुला कर सहोदर बंधु की तरह एक साथ बैठे रहते थे।'

अहिंसा के महानायक भगवान महावीर ने जल, वृक्ष, अग्नि, वायु और मिट्टी तक में जीवत्व स्वीकार किया। उन्होंने अहिंसा की विशद व्याख्या करते हुए जल और वनस्पति के संरक्षण का भी उद्घोष किया। जल के मितव्ययितापूर्ण उपयोग और वनस्पति की सुरक्षा की बात कही। आज हमें उनके सिद्धांतों पर चलकर **'वृक्ष बचाओ, संसार बचाओ'** उक्ति को अमल में लाना होगा। प्रकृति व पर्यावरण के विरुद्ध चलने से ही भूकंप आदि प्राकृतिक प्रकोपों का हमें सामना करना पड़ रहा है। अतः प्रभु महावीर के सिद्धांतों को आत्मसात कर पर्यावरण व प्रकृति की सुरक्षा का संकल्प हमें लेना होगा। भगवान महावीर का आविर्भाव भले ही आज से 2600 वर्ष पहले एक निश्चित देश-काल और वातावरण में हुआ हो, परंतु जिन मूल्यों, विचारधारा व धर्म दर्शन की स्थापना की, वह शाश्वत और सार्वभौम है।

हथियारों की दौड़ और सत्ता और धर्म की उन्मादिता ने मनुष्य को विनाश की कगार पर ला खड़ा कर दिया है। इतने घातक हथियार अनेक राष्ट्रों में संग्रहित हैं जिसके प्रयोग में मानव मात्र ही नहीं, प्राणी मात्र का विनाश हो जाएगा।

आज की सबसे बड़ी समस्या है कि हम महाविनाश को चुनें या महावीर को। भगवान महावीर का मार्ग आज के युग की समस्त समस्याओं के निराकरण का, मूल्यों की पुनर्स्थापना का, जीवन में नैतिकता के समावेश का, भोगवादिता, संग्रह तथा हिंसा से बचने का रास्ता है। महावीर के संदेश की आज राजनीतिक, धार्मिक, सभी क्षेत्रों में उपयोगिता है। आज के बदलते युग में महावीर के मार्ग की उपयोगिता उतनी कभी नहीं रही होगी जितनी आज है। ❑

निमित्त-उपादान : चिंतन के कुछ बिंदु

डॉ. अनेकान्त कुमार जैन

दर्शन-जगत में कारण-कार्य व्यवस्था हमेशा से एक विमर्शनीय विषय रहा है। ईश्वरवादी तो इस जगत को एक कार्य मानकर कारण की खोज 'ईश्वर' तक कर डालते हैं। जैनदर्शन ने कारण-कार्य-मीमांसा पर बहुत गहरा चिंतन किया है। कार्योत्पत्ति में पांच कारणों के समवाय की घोषणा करते हुए जैनाचार्य वैज्ञानिकता का परिचय तो देते ही हैं, साथ ही 'अकर्तृत्व' के समवाय की घोषणा करते हुए जैनाचार्य दूसरी-तीसरी शती के महान आचार्य सिद्धसेन 'सन्मतिसूत्र' में लिखते हैं—

**'कालो सहाव णियई पुव्वकयं पुरिस कारणेगंता।
मिच्छत्तं ते चेव उ समासओ होंति सम्मत्तं।।'**

इसमें काल, स्वभाव, नियति, निमित्त (पूर्वकृत) और पुरुषार्थ—इन पांचों से किसी कार्य की उत्पत्ति होती है—यह स्वीकार किया गया है। इन पांचों को बराबर महत्त्व देकर इन्हें कारण मानना अनेकांत है, सम्यक्त्व है।

परमपूज्य आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज प्रायः एक वाक्य अनेकांत-स्याद्वाद दृष्टि से कहते हैं—'निमित्त कुछ करता नहीं, निमित्त के बिना कुछ होता नहीं।' यह वाक्य हमें वस्तु-स्वभाव समझाने का प्रयास कर रहा है। मैं मानता हूं—जो यह कहता है कि निमित्त से कुछ नहीं होता—वह जैनदर्शन को नहीं जानता और जो यह कहता है कि निमित्त ही सब कुछ करता है, वह भी जैन दर्शन को नहीं जानता।

यहां धैर्य से समझने की आवश्यकता है। प्रत्येक द्रव्य का अपना-अपना उपादान होता है। उपादान में शक्ति न हो—क्षमता, योग्यता न हो तो लाखों-करोड़ों निमित्त भी मिल जायें, आ जायें तो भी द्रव्य को अपने अनुरूप परिणाम नहीं सकते। इसीलिए कहा गया कि 'निमित्त कुछ करता नहीं'। दूसरी तरफ उपादान में कितनी ही सामर्थ्य हो, यदि निमित्त उपस्थित नहीं है तो वह परिणमन कर ही नहीं सकता। इसीलिए कहा है कि 'निमित्त के बिना कुछ होता नहीं'। ये दोनों बातें सही हैं। हमें अनेकांत दृष्टि से विचार करना चाहिए।

वर्तमान समाज में दो तरह के लोग दिखाई दे रहे हैं जो अपनी रुचि और प्रियता के कारण किसी एक को ही सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। वे दो तरह के लोग निम्न प्रकार से हैं–निमित्त प्रिय लोग और उपादान प्रिय लोग।

निमित्तप्रिय लोग

ये वो लोग हैं जिन्हें निमित्त के गीत गाने में आनंद आता है। मजबूरी में ये 'उपादान' की हां तो भरते हैं, पर उस पर ज्यादा ध्यान नहीं देते, बाहरी क्रिया-कांडों से ही कल्याण मानने के कारण रात-दिन उसी में मग्न रहते हैं, आत्मा की शुद्धता और उपादान की तरफ देखने या विचार करने का समय ही नहीं निकाल पाते हैं।

उपादानप्रिय लोग

ये वो लोग हैं जो बाह्य क्रियाकांडों में आलसी होते हैं और उपादान के ही गीत गाकर निमित्त को ज्यादा महत्त्व नहीं देते। कई शास्त्र-प्रमाण देने पर निमित्त का निषेध तो नहीं कर पाते हैं किंतु उपादान के आगे उसे कुछ खास नहीं समझते हैं। कई बार तो अतिरेक में 'निमित्त' की सत्ता तक को चुनौती दे डालते हैं।

हम अपनी निजी प्रियता-अप्रियता के कारण रुचि-अरुचि के कारण ही वस्तु का जो मूल स्वभाव है वह समझ नहीं पाते हैं। उसका कारण यह है कि मनुष्य स्वभाव से कर्मशील होता है और हम क्या करें? की हड़बड़ी वाली जिद उसे पहले हम क्या व कैसे जानें,

समझें? से कोसों दूर कर देती है। यदि हम कुछ समय के लिए क्या करें? वाली कर्तृत्व बुद्धि को दूर कर दें और पहले सिर्फ सिद्धांत को और उसकी निरूपण-शैली को समझने की कोशिश करें तो शायद क्या करें? का समाधान मिल सकता है।

स्वयंभूस्तोत्र में आचार्य समंतभद्र ने 'अनेकांतोप्यनेकान्तः' कहकर 'अनेकांत' को भी अनेकांत स्वरूप बतलाया है। निमित्त और उपादान—इन दोनों को स्वीकारना अनेकांत दृष्टि है और किसी एक को ही मानकर दूसरे का सर्वथा निषेध कर देना एकांत दृष्टि है। यह तो सही है, पर अकेले निमित्त में भी एकांत और अनेकांत दोनों घटित हो सकते हैं, और अकेले उपादान में भी। धैर्य के साथ थोड़ा गहराई में जायें तो शायद कोई नई बात समझ में आ जाये।

निमित्त संबंधी अनेकांत

जो अनेकांत की 'अस्ति-नास्ति' वाली स्याद्वाद-सप्तभंगी को जानते हैं वे विचार करें कि निमित्त और उपादान-यह दोनों भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं।

स्यात् अतः दोनों पदार्थ अपने-अपने स्वरूप से अस्ति रूप हैं और दूसरे के स्वरूप से नास्ति रूप हैं।

स्यात् अतः निमित्त स्वरूप से अस्तिरूप है और पररूप से नास्ति रूप हैं।

स्यात् अतः उपादान में निमित्त का अभाव है, इस अपेक्षा से उपादान में निमित्त कुछ नहीं कर सकता।

निमित्त निमित्त का कार्य करता है, उपादान का कार्य नहीं करता—यह निमित्त का अनेकांत स्वरूप है। इस माध्यम से निमित्त का यथार्थ ज्ञान हो सकता है।

निमित्त संबंधी एकांत

यदि कोई माने निमित्त निमित्त का कार्य भी करता है और निमित्त उपादान का कार्य भी करता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि निमित्त अपने रूप से अस्ति रूप है और पररूप से भी अस्ति रूप है। तब निमित्त पदार्थ में अस्ति-नास्ति रूप परस्पर विरुद्ध दो धर्म सिद्ध नहीं हुए, इसीलिए ऐसा मानना एकांत है।

उपादान संबंधी अनेकांत

जिस प्रकार निमित्त भिन्न पदार्थ है उसी प्रकार उपादान भी भिन्न पदार्थ है—

स्यात् अतः उपादान स्वरूप से है, पररूप से नास्ति रूप है।

स्यात् अतः उपादान उपादानरूप से है, निमित्त रूप से नास्ति है।

स्यात् अतः निमित्त में उपादान का अभाव है, इस अपेक्षा से निमित्त में उपादान कुछ नहीं कर सकता।

उपादान—उपादान का कार्य करता है, निमित्त का कार्य नहीं करता। यह उपादान का अनेकांत स्वरूप है। इस माध्यम से उपादान का यथार्थ ज्ञान हो सकता है।

उपादान संबंधी एकांत

यदि कोई माने कि उपादान उपादान का कार्य भी करता है और उपादान निमित्त का भी कार्य करता है तो इसका भी यही अर्थ हुआ कि उपादान स्वरूप से अस्तिरूप है और पररूप से भी अस्तिरूप है। तब उपादान पदार्थ में अस्ति-नास्ति रूप परस्पर विरुद्ध दो धर्म घटित नहीं हुए, अतः ऐसा मानना एकांत है।

निष्कर्ष यह है कि सबसे पहले हम निमित्त और उपादान इन दोनों की ही स्वयं-स्वयं में पृथक्-पृथक् पूर्ण स्वतंत्र सत्ता समझ लें, फिर इन दोनों के आपसी संबंधों की खिचड़ी पकायें। इतना समझ लेने पर ही कुछ समाधान की तरफ आगे बढ़ सकते हैं।

निष्कर्ष—मैं मानता हूं—इन तथ्यों को समझने के लिए आग्रह-रहित अत्यंत धैर्य की आवश्यकता है। निमित्त उपादान में कुछ करता है या नहीं? ये दोनों ही बातें चिंतन सापेक्ष हैं, दार्शनिक दृष्टि तो यही है कि निमित्त की उपस्थिति अनिवार्य है, किंतु आध्यात्मिक दृष्टि के अपने अलग मापदंड हैं, अध्यात्म में सूक्ष्मातिसूक्ष्म चिंतन करके जीव अपने पौरुष को पूर्ण स्वतंत्र देखता है। परम शुद्ध स्वरूप निमित्त का मुहताज नहीं है। शुद्ध द्रव्य दृष्टि की सचाई यह है कि निमित्त का निषेध नहीं वरन् उसका स्वरूप समझकर उसकी गुलामी से इनकार कर देना। कथन तो यहां तक है कि निमित्त

स्वतः अनुकूल परिणमन करेंगे, किंतु तभी जब दृष्टि स्वभावसम्मुख होगी। निमित्त की सत्ता को स्वीकारना किंतु इस स्वीकारोक्ति में उपादान की स्वतंत्रता को पराधीन कर देना संभवतः न्याय नहीं। यही अपेक्षा समयसार को भी दृष्टिप्रधान ग्रंथ के रूप में मान्यता देती है।

जरा सोचें कि द्रव्य में किस समय परिणमन नहीं है, जगत में किस समय निमित्त नहीं है? हमारे मानने या न मानने से वस्तुस्थिति तो बदलती नहीं है। स्पष्ट है कि जगत के प्रत्येक द्रव्य में प्रति समय परिणमन हो ही रहा है और निमित्त भी सदैव होता ही है तब फिर चिंतन करें कि इस निमित्त के कारण यह हुआ—यह बात कहां तक टिकती है? और निमित्त न हो तो नहीं हो सकता—यह प्रश्न भी कहां तक टिकता है? यहां कार्य होने में और निमित्त होने में कहीं भी समय-भेद नहीं है।

यहां निमित्त का अस्तित्व कभी भी नैमित्तिक कार्य की पराधीनता नहीं बतलाता है। वह मात्र अपनी अपेक्षा नैमित्तिक कार्य को प्रकट करता है, जैसे—पूछा जाय कि निमित्त किसका? तब उत्तर दिया जायेगा कि जो नैमित्तिक कार्य हुआ उसका। यह सब बातें दृष्टि की हैं। हम संयोगी दृष्टि से भी देख सकते हैं, वियोगी दृष्टि से भी।

अनेकांत का आध्यात्मिक दृष्टिकोण यह है कि वहां मुख्यता गौणता का चिंतन उपादेयता और हेयता के रूप में होने लगता है। यहां आत्मानुभव की प्रबल विधेयात्मकता समस्त बंधन स्वरूप प्रतीत होने वाले तत्त्वों के प्रति निषेधात्मक दृष्टिकोण की उत्पत्ति का सहज कारण बन जाती है।

सिद्धांत तथा शास्त्रीयता का सहारा लेकर वस्तुस्वरूप को तो यहां भी समझा जाता है, किंतु उसमें से आत्माराधना में जो साधक तत्त्व हैं उनको उपादेय तथा अन्य को हेय बतलाया जाता है। इस क्षेत्र में 'सार-सार को गहि लहे, थोथा देइ उड़ाय' वाली सूक्ति का सहारा लिया जाता है। यहां जिसे हेय करना है, अतिरेक में उसके प्रति निषेध की भाषा भी मुखरित होने लगती है जो विवाद उत्पन्न करती है। पुत्र की धृष्टता से रुष्ट पिता उसे 'तू मेरे लिए मर गया' तक कह देते हैं। यहां मात्र दृष्टि-परिवर्तन अर्थ है, वस्तु-परिवर्तन नहीं।

इसी प्रकार आध्यात्मिक दृष्टि का कथन 'निमित्त कुछ नहीं करता' का भी अभिप्राय समझना चाहिए कि निमित्त मेरे लिए कुछ नहीं। व्यवहार झूठा, जगत मिथ्या जैसे वाक्य मात्र दृष्टि-परिवर्तन की अपेक्षा से कहे जाते हैं, वस्तु-परिवर्तन की अपेक्षा से नहीं। अध्यात्म में भी निमित्ताधीन दृष्टि का निषेध है, निमित्त का नहीं। निमित्त को कर्ता कहा जाता है, क्योंकि भाषा अकसर कर्तृत्व वाली होती है, किंतु यह व्यवहार है। वास्तव में वह सिर्फ उपस्थिति के शाश्वत नियम के कारण ही कर्तृत्व वाली होती है, वास्तव में वह सिर्फ उपस्थिति के शाश्वत नियम के कारण ही कर्तृत्व का आरोपी बन जाता है या हमारे द्वारा मान लिया जाता है यह भी एक सापेक्ष सत्य ही है।

वस्तु-स्थिति क्या है?

निमित्त स्वतंत्र है, वह अपना कार्य करता है। उपादान स्वतंत्र है, वह भी अपना कार्य करता है। दोनों एक साथ रहते हैं और अपना-अपना काम समय पर करते हैं। दोनों पदार्थ एक-दूसरे के लिए परिणमन नहीं कर रहे हैं, मात्र परस्पर उपकार कर रहे हैं। उपकार का अर्थ हमेशा कर्ता नहीं होता है।

दिखाई क्या देता है?

निमित्त उपादान का परिणमन रहा है, उपादान निमित्त का परिणमन रहा है। दोनों एक-दूसरे के बिना जी नहीं सकते—यह शाश्वत नियम है। निमित्तप्रिय लोग सिर्फ निमित्त को देखते हैं तो उन्हें दिखाई देता है कि निमित्त चाहे तो कुछ भी बदल दे, उपादान तो निमित्ताधीन हैं। उपादानप्रिय लोग सिर्फ उपादान को देखते हैं तो उन्हें दिखाई देता है—उपादान निमित्त को परिणमन देता है अतः वही बलवान है, निमित्त तो उसका नौकर है, इसलिए निमित्त तो उपादान के आधीन है।

हम वो मानते हैं जो दिखाई देता है। सम्यग्दृष्टि मनुष्य दोनों को सिर्फ देखता है, पर मानता वह है जो वस्तु-स्थिति है। ❐

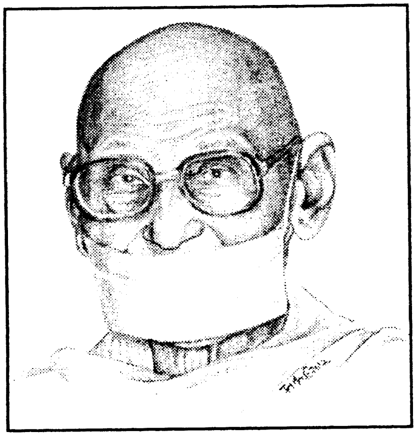

सुख दुःख से मुक्त चेतना बने

आचार्य महाप्रज्ञ का अंतिम प्रवचन

हर व्यक्ति अनेक अवस्थाओं से गुजरता है। व्यक्ति जन्म लेता है, शिशु बनता है, बड़ा होता है, कुमार बनता है, युवा बनता है, प्रौढ़ बनता है और वृद्ध भी बनता है। दस-दस वर्ष की दस अवस्थाएं बतलाई गईं। उन अवस्थाओं का जीवन क्रम भी अलग-अलग प्रकार का होता है। हर वर्ष और हर दिन व्यक्ति अलग-अलग प्रकार की संवेदना करता है। कभी सुख की संवेदना और कभी दुःख की संवेदना। शायद एक दिन भी ऐसा नहीं जाता होगा, जिस दिन व्यक्ति ने सुख की संवेदना न की हो अथवा दुःख की कोई संवेदना न की हो। अलग-अलग संवेदनाएं होती हैं। प्रश्न भी होता है कि ऐसा क्यों होता है? यह एक स्वाभाविक प्रश्न है और यह प्रश्न उत्तर भी मांगता है। मेघकुमार भगवान् महावीर के पास बैठा है और इस प्रश्न का उत्तर पाना चाहता है। मेघकुमार ने कहा–

सुखास्वादाः समे जीवाः, सर्वे सन्ति प्रियायुषः।
अनिच्छंतोऽसुखं यान्ति, न यान्ति सुखमीप्सितम्।।

भंते! सब जीव सुख चाहते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता। किसी से भी पूछ लो–सुख चाहते हो या दुःख? छोटे बच्चे से भी पूछ लो–सुख चाहते हो या दुःख? उत्तर मिलेगा–सुख, क्योंकि सुख सबको अच्छा लगता है। सर्वे संति प्रियायुषः–सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। सबमें जीने की इच्छा है, जिजीविषा है। हर आदमी अच्छा जीवन जीना चाहता है, पूरा जीवन जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता। मेघकुमार ने कहा–भंते! आदमी सुख चाहता है और बिना बुलाए दुःख आ जाता है। आदमी जीना चाहता है और मौत आ जाती है। ऐसा क्यों होता है? कारण क्या है इसका? आदमी जो चाहे वह मिले तो ठीक बात है। चाहता कुछ है, मिलता और कुछ है तो वह ठीक नहीं होता। जो चाहे वह मिल जाए तो ठीक है और जो चाहे वह न मिले या उलटा मिले तो फिर आदमी के मन में प्रश्न भी होता है कि इसका कारण क्या है? हम जो चाहते हैं, वह क्यों नहीं होता? हमारी इच्छा के विरुद्ध काम क्यों होता है?

कः कर्ता सुखदुःखानां, को भोक्ता कश्च घातकः।
सुखदो दुःखदः कोस्ति, स्याद्वादीश! प्रसाधि माम्।।

भंते! एक प्रश्न और है। सुख और दुःख का कर्ता कौन है? सुख और दुःख–ये दोनों जीवन के साथ जुड़े हुए हैं। इनका कर्ता कौन है और भोक्ता कौन है? सुख देने वाला कौन है और दुःख देने वाला कौन है? यह मैं जानना चाहता हूं।

हर आदमी के मन में प्रश्न होना स्वाभाविक है, सुख देने वाला कौन है? दुःख देने वाला कौन है? प्रायः यह आरोपण होता है कि वह आदमी मुझे दुःख दे रहा है। सुख दे रहा है, यह सुनने को बहुत कम मिलता है। दुःख दे रहा है, यह सुनने को बहुत मिलता है।

कुछ समय पहले हरियाणा का एक युवक आया, बोला—बहुत शिथिल हो गया हूं।

मैंने पूछा—क्या कारण है?

उसने कहा—पता नहीं कोई तांत्रिक-प्रयोग करा दिया गया। घर में अनेक प्रकार की चीजें मिलती हैं। हड्डियां मिल जाती हैं, खराब चीज मिल जाती है। बहुत कष्ट का अनुभव हो रहा है।

हम इस पर दो दृष्टियों से विचार करें। भगवान महावीर ने उत्तर दिया—मेघ! आत्मा ही सुख-दुःख की कर्ता है और आत्मा ही सुख-दुःख की भोक्ता है।

आत्मा कर्ता स एवास्ति, भोक्ता सोऽपि च घातकः।
सुखदो दुःखदः सैष, निश्चयाभिमतं स्फुटम्।।

निश्चयनय में तो आत्मा ही सुख-दुःख की कर्ता है, किंतु व्यवहारनय की दृष्टि से देखें तो सुख-दुःख का निमित्त कोई दूसरा भी बन सकता है, अपना अज्ञान भी बन सकता है, दूसरे व्यक्ति का गलत सुझाव भी बन सकता है, गलत परामर्श भी बन सकता है, गलत चिंतन भी बन सकता है, व्यक्ति का अपना लोभ भी बन सकता है।

एक बार एक ब्राह्मण ने दक्षिणायन शंख की साधना की। वह शंख सिद्ध होने पर काफी कामनाओं को पूरा करता है। ब्राह्मण की साधना सिद्ध हुई। वह दक्षिणायन शंख लेकर अपने घर जा रहा था। रास्ते में एक घर पर ठहरा। प्रातःकाल का समय। चार बजे से पहले उठा, शंख की पूजा की और मांगा—मुझे हजार रुपए दो। शंख ने हजार रुपए दे दिए। घर वाले ने सोचा, यह तो बहुत करामाती शंख है। जो मांगता है वह मिल जाता है। इस शंख को लेना चाहिए। वह ब्राह्मण इधर-उधर गया। घर का मालिक आया, शंख को चुरा लिया और उसकी जगह दूसरा शंख रख दिया। ब्राह्मण जब घर पहुंचा, तब पता चला कि कुछ धोखा हुआ है। सोचा, लड़ाई करने से कोई मतलब नहीं है। बुद्धि के द्वारा ही इस काम को ठीक किया जा सकता है। पुनः यात्रा पर गया, दूसरे शंख को लाया और उसी घर पर ठहरा। पश्चिम रात्रि का समय था। वह बैठा और मांगना शुरू किया। उसने कहा—मुझे हजार रुपये दो। शंख बोला—हजार नहीं, लो ये दस हजार रुपये। घर वाले ने सुना कि यह तो उससे अधिक अच्छा है। वह तो जितना मांगो, उतना देता है। यह तो जितना मांगो, उसका दस गुना देता है, बहुत अच्छा है। तो क्या करूं? वैसा उपाय हो जाए। जब ब्राह्मण इधर-उधर हुआ, तब उसने पहले वाले शंख को रख दिया और इस शंख को ले लिया। ब्राह्मण अपने शंख को पाकर चला गया। अब आत्मा कैसे कर्ता-विकर्ता बनती है, अपनी प्रवृत्तियां, अपना चिंतन, अपना एटीट्यूट, अपना भाव किस प्रकार कर्ता बनता है, एक बहुत स्पष्ट उदाहरण है कि उस व्यक्ति के मन में अतिलोभ का भाव आया और उस लोभ ने संपत्ति को गंवा दिया और हाथ में एक दूसरा शंख ले लिया। अब दूसरा दिन। पश्चिम रात्रि में चार बजे का समय। वह उठा और बोला—मुझे हजार रुपये दो। शंख ने कहा—लो, दस हजार। घर वाला व्यक्ति मांगता चला गया और वह बोलता चला गया। आखिर उसने कहा—कुछ दो तो सही। तब उस शंख ने कहा—तुम भी बोलते जाओ और मैं भी बोलता जाऊं। और कुछ नहीं है। उसने कहा—

दक्षिणायनशंखस्य, चरित्रं भिन्नमस्ति यत्।
अहं डफोरशंखोस्मि, वदामि न ददामि च।।

तुम जानते नहीं हो। वह दक्षिणायन शंख था, तुमने जो पहले लिया था। उसका चरित्र भिन्न होता है। मैं तो ढपोरशंख हूं, बोलता हूं, देता कुछ भी नहीं। मैं देना नहीं जानता, बोलना जानता हूं।

हम इस कथावस्तु पर विचार करें कि उसको किसने ठगा? अपनी ही लोभ की प्रवृत्ति ने। पहले तो चोरी की प्रवृत्ति ने वह शंख लिया। फिर लोभ इतना बढ़

गया और उस लोभ से ठगा गया। दक्षिणायन शंख हाथ से निकल गया और ढपोरशंख हाथ में आ गया। हर घटना का हम विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि आदमी स्वयं मायाजाल रचता है और अपने मकड़जाल में स्वयं ही फंस जाता है। आप दुनिया के बहुत सारे कार्यों का विश्लेषण करें, बहुत सारी नीतियों का विश्लेषण करें कि जो नीति निर्माण करते हैं, नीति निर्माण करने वाले अपने ही मकड़जाल में फंस जाते हैं।

इन सारे संदर्भों में हम विचार करें तो निष्कर्ष आएगा कि कर्ता मूलतः आत्मा है और दूसरा कहीं-कहीं निमित्त बन सकता है। तर्कशास्त्र में दो कारण माने गए हैं—मूल कारण और निमित्त कारण। तीन भी हो सकते हैं, पर मूल दो कारण माने गए हैं। निमित्त कारण भी बनते हैं। सुख के निमित्त भी बनते हैं और दुःख के निमित्त भी बनते हैं। पर मूल ये नहीं हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया—अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य। दुःख और सुख का कोई कर्ता नहीं है। आत्मा ही कर्ता और विकर्ता है, क्योंकि संवेदन किसको होता है? संवेदन चेतना को होता है। जड़ वस्तु को संवेदन नहीं होता। एक आदमी को बहुत धन की प्राप्ति हो गई, सुख का संवेदन हुआ। एक व्यक्ति के घाटा लग गया, दुःख का संवेदन हुआ। वह संवेदन पैसे में नहीं था। संवेदन करने वाली हमारी आत्मा है। आत्मा ही सुख का संवेदन करती है और आत्मा ही दुःख का संवेदन करती है। दूसरा निमित्त बन सकता है। कोई आदमी गुस्से में आया और एक थप्पड़ मार दिया। जिसको थप्पड़ मारा उसको कष्ट हुआ, दुःख का संवेदन हुआ और निमित्त वह थप्पड़ मारने वाला बन गया। चलते समय ठोकर लगी और दर्द हो गया। संवेदन तो स्वयं करेगा और निमित्त पत्थर बन गया। निमित्त दूसरा कोई बन सकता है। हम यह मानें कि मूल कारण कोई दूसरा नहीं है, निमित्त बन सकते हैं। अगर हम अपनी चेतना का परिष्कार करें तो फिर कोई सुख-दुःख देने वाला नहीं है। न कोई भौतिक पदार्थ सुख देने वाला, न कोई दुःख देने वाला। फिर तो अपनी आत्मा का आनंद प्रकट होता है। ऐसा आनंद, जिसका अनुभव कभी होता नहीं है।

लोग भौतिक सुख-दुःख से परिचित हैं। एक वस्तु मिली, सुख हुआ। अनुकूल योग मिला, सुख हुआ। इससे तो परिचित हैं। किसी निमित्त के बिना, किसी वस्तु की प्राप्ति के बिना भी सुख होता है। उसे जानना बहुत जरूरी है। बिना प्राप्ति के भी सुख होता है। हम लोग सरदारशहर आ रहे थे। लोगों ने कहा—सरदारशहर की जनता में बहुत उत्साह है, सुख है, आनंद है, सुख की लहर है। हमने क्या दिया? कुछ दिया नहीं हमने। न धन दिया, न कोई आशीर्वाद दिया, न और कुछ किया, फिर सुख किस बात का? यह सुख वस्तु की प्राप्ति से होने वाला सुख नहीं है। यह सुख आत्मानुभूति से प्राप्त होने वाला सुख है।

हम इसको समझें कि संयम में भी सुख होता है। एक परिवार में दो महिलाएं हैं। घर में अच्छा भोजन बना। एक ने खाया और कहने लगी कि बड़ा अच्छा लगा, बहुत स्वाद आया। दूसरी के उपवास है। उससे पूछा—कैसे है? उसने कहा—बहुत आनंद है, बहुत सुख है। खाने को कुछ मिला नहीं, सुख किस बात से हुआ? बहुत सारे लोग जो वृद्ध अवस्था में हैं, वे कहते हैं कि देखो, ध्यान रखना। मैं अनशन के बिना न चला जाऊं। अब अनशन में कौनसा सुख मिलेगा? अपने भीतर भी सुख का समुद्र है। आप न मानें कि वस्तुओं से सुख मिलता है। आत्मा का लक्षण है—अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत शक्ति। यह हमारे भीतर है। जो व्यक्ति भीतर का सुख लेना जानता है, उसे बाहर के सुख फीके लगने लग जाते हैं। एक उदाहरण बतलाऊं, जैन विश्व भारती में तुलसी अध्यात्म नीड़म् में शिविर था। शिविर संपन्न हुआ और लोग जाने लगे। मैं उधर टहल रहा था। एक भाई आया, आकर वंदना की और खड़ा हुआ, रोने लग गया, आंखों में आंसू आ गए। मैंने पूछा—क्या किसी ने आपका अपमान किया है? उसने कहा—नहीं, यहां तो बहुत अच्छा वातावरण है। तो आपको कुछ हुआ? नहीं, कुछ नहीं हुआ। तो फिर

आंखों में आंसू? वह बोला, ये दुःख के आंसू नहीं, ये हर्ष के आंसू हैं। हर्ष के साथ-साथ कष्ट के भी हैं। किस बात का कष्ट? उसने कहा—मैं आज दस दिन के बाद शिविर को छोड़कर जा रहा हूं। मैं मुंबई से आया हूं। उस मोहमयी नगरी में रहता हूं। वह संपन्न आदमी, करोड़पति आदमी था। उसने कहा—साठ वर्ष की मेरी अवस्था है और साठ वर्ष में जितना वस्तुओं का उपभोग करना था, मैंने खुलकर किया। किंतु इस बार जब आपने अंतर्यात्रा का प्रयोग करवाया तो उस अंतर्यात्रा के प्रयोग से मुझे जो सुख मिला, वैसा सुख मुझे साठ वर्ष की अवस्था में कभी नहीं मिला।

अब मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि वह सुख कहां से आया? हमने कुछ भी नहीं दिया। न कोई खाने की वस्तु दी, न कोई धन दिया। उसको इतना सुख कहां से मिला? वह व्यक्ति कहता है कि इतने वर्षों में जो सुख मुझे नहीं मिला, उससे ज्यादा सुख मुझे इन दस दिनों में मिला। यह सुख कहां से आया? या तो मानें कि वह झूठ बोल रहा है, किंतु झूठ बोलने का कोई मतलब नहीं है। यदि सच बोल रहा है तो हमारे इस प्रश्न का उत्तर है कि अगर हम खोजें तो अपने भीतर बहुत सुख है, आनंद है और न खोजें तो कुछ मिलता नहीं है।

मैं दूसरी घटना बतलाऊं, वहीं जैन विश्व भारती में ही दूसरी बार शिविर था। मैं प्रयोग करा रहा था। एक घंटे का प्रयोग संपन्न हुआ। सब लोग उठ गए। एक युवक नहीं उठा। युवक भी बहुत पढ़ा-लिखा व होशियार था। राजलदेसर का रमेश कुंडलिया, जो कि हैदराबाद में रहता था। हम लोग चले गए। थोड़ी देर बाद उसकी मां आई और बोली, वह तो उठ नहीं रहा है। फिर हमारे मुनि किशनलालजी और मुनि महेन्द्रजी गए। दो घंटे बीत गए तो भी नहीं उठा। फिर मैं गया, जाकर देखा और एक प्रयोग किया। उसके दर्शन केंद्र को दबाया।

तीन घंटे बाद वह उठा। मैंने कहा—रमेश! क्या तुम्हें पता नहीं चला? रमेश—मुझे पता तो चल गया कि ध्यान का समय खत्म हो गया। मैंने कहा—इतने संत आए, तुम्हारी मां आई, सबने कहा, फिर तुम उठे क्यों नहीं? वह बोला—मैं उठ नहीं सका। उस समय मेरे दर्शन केंद्र में इतने सुख के प्रकंपन आ रहे थे कि मैं उस सुख को छोड़ नहीं सका। मैं जानता हुआ भी कि समय हो गया, उस चक्र को तोड़ नहीं सका।

मैं पूछता हूं, वह सुख कहां से आया? तीन घंटे तक पानी पीना, भोजन करना, सब कुछ छूट गया, वह सुख कहां से आया? हम केवल बाहर-बाहर की यात्रा करते हैं, बाहर की बात को जानते हैं, बाहर के सुख को जानते हैं। जो व्यक्ति कभी अपने भीतर नहीं झांकता, आधा घंटा आंख मूंदकर अपने भीतर नहीं देखता, उसको अनुभव ही नहीं हो सकता कि मेरे भीतर क्या है? हर व्यक्ति के भीतर सुख-दुःख है, किंतु अंतर्दर्शन के बिना, भीतर की यात्रा किए बिना कोरी बाहर की यात्रा से उसका अनुभव नहीं हो सकता। इसलिए इस सारे संदर्भ में देखें तो भगवान महावीर ने जो उत्तर दिया, निश्चयनय की दृष्टि से बड़ा सटीक उत्तर है कि आत्मा ही सुख-दुःख की कर्ता है। सुख भी तुम्हारे भीतर है और दुःख भी तुम्हारे भीतर है। सब अपना किया हुआ है। बाहर का निमित्त मिलता है, कभी सुख का संवेदन, कभी दुःख का संवेदन हो जाता है। तुम और आत्मानुभूति में जाओ तो भौतिक सुख से भी परे और इस दुःख से भी परे एक सहज आनंद की अनुभूति हो सकती है।

हम लोग भी ध्यान के प्रयोग इसलिए करते हैं, शिविर भी इसीलिए होते हैं कि व्यक्ति के यह समझ में आए कि यह केवल बाह्य जगत ही हमारा जगत नहीं है। एक दूसरा भीतर का जगत भी हमारा जगत है। हम बाहर के जगत से मुक्त होकर और कभी-कभी भीतर की अंधेरी गहन गुफा में जाने का प्रयत्न करें और वहां क्या है, उसका अनुभव करें तो बात समझ में आएगी कि वास्तव में आत्मा ही सुख-दुःख की कर्ता है, आत्मा ही भोक्ता है और आत्मा ही अपनी अनुभूति के द्वारा इस सुख-दुःख के चक्र से मुक्त हो सकती है। (इस प्रवचन का अविकल रूप ओडियो कैसेट से सुना जा सकता है।) ❑

—'आस्थोपनिषद' ग्रंथ से साभार

आचार्यश्री महाप्रज्ञ
जीवन के कुछ उल्लेखनीय तथ्य

- परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ का जन्म टमकोर ग्राम में आसाढ़ कृष्णा 13, वि.सं. 1977 (14 जून 1920) को हुआ।
- आचार्यवर ने साढ़े दस वर्ष की अवस्था में अपनी मां साध्वी बालूजी के साथ माघ शुक्ला 10, वि.सं. 1987 में पूज्य कालूगणी के करकमलों से सरदारशहर में भंसालीजी के बाग में दीक्षा स्वीकार की। उसी दिन पूज्य कालूगणी ने आपके निर्माण का दायित्व मुनि तुलसी को सौंप दिया।
- आपने स्वल्प समय में संस्कृत, प्राकृत, व्याकरण, दर्शन, न्याय, काव्य आदि का गंभीर अध्ययन कर लिया। आपकी गणना मेधावी मुनियों की पंक्ति में होने लगी।
- आप आचार्य तुलसी के अनन्यतम कृपापात्र शिष्य थे। आपने आचार्य भिक्षु और आचार्य तुलसी के भाष्यकार के रूप में ख्याति प्राप्त की।
- आचार्य तुलसी ने वि.सं. 2001 में आपको अग्रणी, वि.सं. 2004 में साहाय्यपति और वि. सं. 2022 में निकाय सचिव बनाकर आपकी अर्हताओं का मूल्यांकन किया।
- आचार्य तुलसी ने वि.सं. 2035, माघ शुक्ला सप्तमी को राजलदेसर में अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर तेरापंथ धर्मसंघ के युवाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया।
- वि.सं. 2050, माघ शुक्ला सप्तमी को सुजानगढ़ में आचार्य तुलसी ने आचार्य पद का विसर्जन कर महाप्रज्ञ को आचार्य पद का दायित्व संभालने का निर्देश दिया।
- आचार्य तुलसी ने अपने जीवनकाल में आचार्य पद का विसर्जन कर 5 फरवरी 1995 को आचार्य महाप्रज्ञ का आचार्य पदाभिषेक कर एक विलक्षण इतिहास रचा।
- यह भी एक संयोग है कि आचार्य महाप्रज्ञ के 16 युवाचार्य मनोनयन दिवस तथा 16 आचार्य पदाभिषेक दिवस मनाए गए। उनका 16वां युवाचार्य मनोनयन दिवस सुजानगढ़ में और 16वां आचार्य पदाभिषेक दिवस श्रीडूंगरगढ़ में मनाया गया।
- आचार्य महाप्रज्ञ ने 10 वर्ष गृहस्थ जीवन एवं 80 वर्ष मुनि पर्याय का पालन किया। आप 49 वर्ष मुनि के रूप में, 15 वर्ष युवाचार्य के रूप में तथा 16 वर्ष 3 मास आचार्य के रूप में रहे। इस अवधि में एक वर्ष तक वे अपदाभिषिक्त आचार्य के रूप में रहे।

- आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने महान दार्शनिक और मौलिक साहित्यकार के रूप में अपनी पहचान बनाई। उन्हें 'जैन न्याय का राधाकृष्णन', 'आचार्य सिद्धसेन' और 'विवेकानन्द' की संज्ञा दी गई।

- आचार्य महाप्रज्ञ ने 'अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि' लिखी। अपने शासनकाल में अणुव्रत आन्दोलन को बहुत व्यापक और प्रभावी बनाने का प्रयत्न किया। जीवन के अन्तिम दिनों में भी उन्होंने अणुव्रत कार्यकर्ताओं को इस विषय पर मार्मिक मार्गदर्शन प्रदान किया।

- आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने प्रायः विस्मृत जैन साधना पद्धति का अनुसंधान कर पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी के शासनकाल में 'प्रेक्षाध्यान' पद्धति का प्रवर्तन किया। आचार्य तुलसी ने आपके अवदान का मूल्यांकन करते हुए आपको 'जैन योग पुनरुद्धारक' के संबोधन से संबोधित किया। आपको इस उपलब्धि के लिए 'जैन ध्यान योग का कोलम्बस' भी कहा गया।

- जीवनविज्ञान की परिकल्पना शिक्षा के क्षेत्र में एक अभिनव प्रकल्प है। इसे शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा से जुड़ी समस्याओं के समाधान के रूप में स्वीकार किया। अनेक राज्यों के विद्यालयों में जीवनविज्ञान पाठ्यक्रम की मांग हुई।

- आचार्य महाप्रज्ञ के नेतृत्व में आचार्य तुलसी के शासनकाल में पचास वर्ष की संपन्नता पर 'अमृत महोत्सव' मनाया गया। 75वें जन्मदिवस के उपलक्ष्य में आयोजित 'योगक्षेम वर्ष' के आयोजन के सूत्रधार भी आप ही थे।

- आचार्य महप्रज्ञ ने अपने जीवन के नौवें दशक में सात वर्षीय अहिंसा यात्रा कर अहिंसक चेतना के जागरण और नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का महान अभिक्रम किया। इस यात्रा से उनके व्यक्तित्व का अभिनव रूप सामने आया। सर्वधर्म एवं जाति के लोगों ने अहिंसा यात्रा का स्वागत किया। इस यात्रा में साम्प्रदायिक सद्‌भाव का विलक्षण कार्य हुआ।

- आचार्य महाप्रज्ञ की सन्निधि में तत्कालीन राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने अपना जन्मदिन मनाया। इस अवसर पर 'सूरत अध्यात्म घोषणा पत्र' जारी हुआ। उस पर विभिन्न धर्मों के प्रबुद्ध धर्मगुरुओं तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने अपने हस्ताक्षर किए। फ्यूरेक का गठन भी इसी कार्य को आगे बढ़ाने के लिए हुआ।

- आचार्यवर ने अहिंसा यात्रा के दौरान अहिंसा प्रशिक्षण का नया आयाम प्रस्तुत किया। उसके चार अंग निर्धारित किए–1. अहिंसा सिद्धान्त और इतिहास, 2. हृदय परिवर्तन, 3. अहिंसक जीवन शैली, 4. सम्यक् आजीविका एवं आजीविका प्रशिक्षण।

- आचार्यवर ने इस यात्रा के दौरान देश की समस्याओं का अध्ययन एवं गहन विश्लेषण किया। स्वस्थ व्यक्ति, स्वस्थ अर्थव्यवस्था का सूत्र प्रदान करते हुए सापेक्ष अर्थशास्त्र की अवधारणा को विकसित करने की अभिप्रेरणा दी। इस दृष्टि से आचार्यवर की सन्निधि में अनेक बार चिन्तन-मंथन हुआ और सापेक्ष अर्थशास्त्र के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए मार्गदर्शन दिया।

- आचार्यवर के सान्निध्य में अहिंसा विश्व शान्ति एवं सापेक्ष अर्थशास्त्र आदि विषयों पर अनेक अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार हुए।

- आचार्यवर के सान्निध्य में अन्तर्धार्मिक परिसंवाद के अनेक गरिमामय कार्यक्रम हुए। अंतिम अन्तर्धार्मिक परिसंवाद सूफिज्म एवं जैनिज्म पर श्रीडूंगरगढ़ में हुआ।

- इन तीन वर्षों में पूज्यवर ने तेरापंथ के बुद्धिजीवी लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। तेरापंथ प्रोफेशनल फोरम इसी की एक फलश्रुति है।
- आचार्यश्री महाप्रज्ञ का एक अवदान है विकास महोत्सव। आचार्य तुलसी द्वारा अपना पट्टोत्सव न मनाने की घोषणा करने पर आचार्य महाप्रज्ञ ने उसे 'विकास महोत्सव' का रूप दिया और आचार्य तुलसी पट्टोत्सव पर्व विकास महोत्सव के रूप में प्रतिवर्ष मनाया जाने लगा। आचार्यवर ने विकास महोत्सव का विस्तृत प्रारूप प्रस्तुत किया। विकास परिषद का गठन भी इसी विकास महोत्सव की निष्पत्ति है।
- आचार्यश्री महाप्रज्ञ का एक कालजयी कार्य है आगम संपादन। आचार्य तुलसी के वाचनाप्रमुखत्व में जैन आगमों का संपादन कर आचार्य महाप्रज्ञ ने जैन शासन की अतुलनीय सेवा की, श्रुत की विलक्षण समुपासना की। महाप्रयाण के दिन भी आचार्यवर ने आगम संपादन के कार्य को लेकर अपनी प्रसन्नता को अभिव्यक्ति दी। आचार्यवर इन दिनों भगवई के पचीसवें शतक एवं निशीथ सूत्र का भाष्य लिख रहे थे।
- आचार्यवर के जीवन की एक महनीय उपलब्धि है अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय। उन्होंने विज्ञान को अध्यात्म और अध्यात्म को वैज्ञानिक दृष्टि से देखा। उनका साहित्य अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय का जीवंत निदर्शन बन गया।
- आचार्यवर के साहित्य की अजस्र धारा प्रवाहित हुई। उनके तीन सौ से अधिक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। प्रवचन माला के रूप में 'महाप्रज्ञ ने कहा' की शृंखला जारी है। पचास से अधिक ग्रंथ अभी अप्रकाशित हैं। उनके साहित्य ने जैन, जैनेतर प्रबुद्ध समाज को प्रभावित सर्वाधिक किया।
- आचार्यवर को तेरापंथ के प्रथम एकान्हिक शतक निर्माता, प्रथम हिन्दी पुस्तक का लेखक होने का गौरव प्राप्त है।
- बीसवीं शताब्दी में संस्कृत और प्राकृत दोनों में एक साथ आशु वक्तव्य, संस्कृत में आशुकवित्व की सिद्धि महाप्रज्ञ को प्राप्त थी। उन्होंने संस्कृत के जटिल छंदों और दुरूह विषयों पर आशुकवित्व कर विद्वद्‌जगत को विस्मित कर दिया।
- आचार्य महाप्रज्ञ ने गुरुदेवश्री तुलसी के इंगित के अनुसार हिन्दी में 'ऋषभायण' महाकाव्य की रचना की।
- आचार्यवर ने 'आचारांग भाष्य' लिखकर भाष्यकारों की विच्छिन्न परम्परा को अविच्छिन्न बनाया। जैन शासन के इतिहास में आचारांग पर भाष्य लिखने वाले वे प्रथम व्यक्ति हैं।
- आचार्यवर ने अहिंसा व विश्वशान्ति के क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं में समन्वय की दृष्टि से 'अहिंसा समवाय' मंच की कल्पना की। इसमें अहिंसक शक्तियों को एक मंच पर इकट्ठे होकर एक-दूसरे के कार्यों को समझने और नवीन चिन्तन के साथ उसे आगे बढ़ाने की दिशा मिली।
- आचार्य महाप्रज्ञ को तेरापंथ धर्मसंघ में सर्वाधिक उम्र वाले युवाचार्य, सर्वाधिक संयम पर्याय वाले मुनि का स्थान आरक्षित किया। तेरापंथ का कोई भी आचार्य अपने जीवन में नौ के अंक का स्पर्श नहीं कर पाया। आचार्यवर ने अत्यन्त स्वस्थमना अपना 90वां जन्मदिन मनाया।
- जीवन के 83वें वर्ष में आचार्य महाप्रज्ञ सर्वाधिक उम्र वाले आचार्य बने। इस उपलक्ष्य में आयोजित 'कालजयी महर्षि अभिवंदना समारोह' के अवसर पर आचार्यवर की 83 कृतियों का एक साथ लोकार्पण हुआ। किसी लेखक की एक साथ इतनी कृतियों के पुनः प्रकाशन एवं लोकार्पण का यह संभवतः पहला प्रसंग है।

- आचार्यवर के कार्यों, अवदानों एवं उपलब्धियों का व्यापक मूल्यांकन हुआ। पूज्य गुरुदेव तुलसी ने सन् 1978 में आपको 'महाप्रज्ञ' अलंकरण से अलंकृत किया।

- इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार (सन् 2003), राष्ट्रीय साम्प्रदायिक सद्भाव पुरस्कार (सन् 2005) तथा धर्म चक्रवर्ती (सन् 2004) आदि सम्मान मूल्यांकन के स्वयंभू प्रमाण हैं।

- टोहाना मर्यादा महोत्सव (23 जनवरी 1999) पर श्रद्धेय युवाचार्यश्री महाश्रमण ने आचार्य महाप्रज्ञ के सर्वतोमुखी योगदान का उल्लेख करते हुए समग्र धर्मसंघ की ओर से 'युगप्रधान आचार्य' के रूप में संबोधित किया। नई दिल्ली में युवाचार्य महाश्रमण के मार्गदर्शन एवं निर्देशन में आपका युगप्रधान पद पर विधिवत् अभिषेक किया गया।

- आचार्यश्री महाप्रज्ञ का आचार्य तुलसी के साथ गहरा तादात्म्य रहा। आचार्य तुलसी उनके हर कार्यों के साक्षी, प्रेरक और द्रष्टा रहे। आचार्य महाप्रज्ञ ने आचार्य तुलसी से भिन्न अपने व्यक्तित्व की कभी कल्पना भी नहीं की। आचार्य तुलसी का महाप्रयाण आपके जीवन का सर्वाधिक असह्य क्षण था।

- आपने आचार्य तुलसी की विद्यमानता में ही अपने उत्तराधिकारी का नाम निश्चित कर लिया। उन्होंने वह उत्तराधिकारी पत्र आचार्य तुलसी को समर्पित कर दिया, किन्तु आचार्य तुलसी की विद्यमानता में अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति नहीं कर पाए।

- आचार्यवर ने गंगाशहर चातुर्मास में भाद्रपद शुक्ला द्वादशी, वि.सं. 2054 में लाखों आँखों की साक्षी में युवाचार्य महाश्रमण को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर धर्मसंघ को निश्चिंत बना दिया। वे अपने उत्तराधिकारी को प्रतिष्ठित करने और सब दृष्टियों से समर्थ बनाने में सदा प्रयत्नशील और जागरूक रहे।

- आचार्यवर ने इन वर्षों में अपनी आत्मकथा लिखी। उसका एक बार पुनरावलोकन कर उसे अन्तिम रूप भी दे दिया। काश! अपनी आत्मकथा का वे अपने हाथों से लोकार्पण भी कर पाते।

- आचार्यश्री महाप्रज्ञ सुजानगढ़ में आचार्य घोषित हुए। तब से उनके महाप्रयाण तक अर्थात् सोलह वर्षों में 68 संत, 144 साध्वियां, 3 समण एवं 96 समणियां दीक्षित हुई।

- उनके महाप्रयाण के समय धर्मसंघ में आचार्य महाश्रमण सहित 155 संत, महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा सहित 517 साध्वियां, 2 समण एवं 105 समणियां साधनारत थीं।

- आचार्य श्री महाप्रज्ञ महाप्रयाण स्थल सरदारशहर में गुरुदेव की सन्निधि में अन्तिम समय में आचार्य महाश्रमण सहित 56 संत साध्वीप्रमुखा सहित 65 साध्वियां एवं 10 समणियां उपस्थित थीं।

- आचार्यश्री महाप्रज्ञ का महाप्रयाण 9 मई 2010 (वि. संवत् 2067, द्वितीय वैशाख कृष्णा एकादशी) को सरदारशहर के ऐतिहासिक गोठी भवन में 2.55 मिनट पर हुआ।

महाज्योति महाज्योति में विलीन हो गई।

—'आस्थोपनिषद' ग्रंथ से साभार

कब जागेगा देश का युवा?

डॉ. रामभरोसे

आज भी हमारे देश में अशिक्षा के साथ कई सामाजिक समस्याएं विद्यमान हैं। जैसे अंधविश्वास, जनसंख्या बढ़ोतरी, रूढ़िवादिता, बेरोजगारी, दहेज प्रथा एवं भ्रष्टाचार आदि प्रमुख है। इन समस्याओं से मुक्त होने हेतु शिक्षा बेहद आवश्यक है, परंतु यहां दूसरा पक्ष है कि शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु सरकारी प्रयास तो किए जा रहे हैं, लेकिन क्या वह प्रयास सफल हो पाए हैं या हो रहे हैं? इस असफलता का एक मुख्य कारण जनसंख्या विस्फोट और दूसरा कारण सरकारी मशीनरी में व्याप्त भ्रष्टाचार है। समाज में अशिक्षा की समस्या का निराकरण देश का शिक्षित युवा वर्ग, सरकारी मशीनरी के साथ मिलकर सहजता से कर सकता है। यदि प्रत्येक शिक्षित युवक/युवती किसी एक अशिक्षित व्यक्ति को भी शिक्षित करने का सकारात्मक प्रयास करें तो स्वतः ही इस समस्या का समाधान हो जाएगा।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टाइन का कथन 'जीवन-मूल्यों को स्वीकार करना शिक्षा का उद्देश्य है।' और महात्मा गांधी का उपदेश है–'सदाचार और निर्मल जीवन सच्ची शिक्षा का आधार है' तथा भारत रत्न डॉ. अम्बेडकर ने युवाओं को–'शिक्षित बनो, संघर्ष करो, संगठित रहो' का नारा दिया था। इन तीनों महापुरुषों ने समान रूप से एक ही बात कही है कि श्रेष्ठ शिक्षा का उद्देश्य पारस्परिक संबंधों का ज्ञान होना है, परंतु यह चिंता का विषय है कि हम अपने जीवन को समाज के लिए उपयोगी बनाने के लिए कभी कुछ नहीं सोचते हैं और जो सोचते भी हैं तो कुछ कर नहीं पाते हैं। हम अपने जीवन को किस प्रकार लोकोपयोगी बना सकते हैं? आज के युवा वर्ग को इस पर विचार करना चाहिए। देश के लिए बड़े दुर्भाग्य की बात है कि देश का युवा समाज को अपना योगदान देना दूर की बात है, बल्कि वह खुद ही अपना विकास कर पाने में असमर्थ दिखाई दे रहा है। पब कल्चर जैसे पश्चिमी संस्कारों ने हमारे युवाओं को मानसिक और शारीरिक रूप से खोखला कर दिया है, जिसका दुष्परिणाम आज कई रूपों में हमारे सामने है।

ज्ञातव्य है कि हमारे देश में कई सामाजिक बुराइयां आज भी उसी रूप में मौजूद हैं, जिस रूप में वे पहले थी जब उनका प्रारंभ हुआ था। प्रमुख रूप से रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, जातिगत भेदभाव, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, बढ़ती जनसंख्या, अशिक्षा, दहेज-प्रथा इत्यादि। यह विडंबना ही कहा जाएगा कि देश इन समस्याओं को वर्षों से झेलता आ रहा है। भविष्य हेतु भी कुछ ऐसा ही प्रतीत हो रहा है कि हमें इन समस्याओं को इसी प्रकार से झेलना होगा या देश का युवा वर्ग इन समस्याओं के निराकरण हेतु अपना सहयोग करेगा? यह एक और खेद की बात है कि हम आज भी स्वयं कुछ करने के बजाय किसी अवतार के आने की राह देख रहे हैं, परंतु यह तो बिल्कुल अकल्पनीय बात है।

विगत कई शताब्दियों से प्रचलित जाति-व्यवस्था और शासन-पद्धति ने समाज को कई टुकड़ों में बांट-सा दिया है। इनमें मुख्यतः वर्गवाद, संप्रदायवाद, ऊंच-नीच आदि की दुर्भावनाएं शामिल हैं और बड़े ही खेद की बात है कि यह जातिगत भेदभाव केवल सवर्ण वर्गों तक ही सीमित नहीं है बल्कि दलितों या अन्य पिछड़े वर्गों में भी कई वर्ग हैं, जो आपस में वैमनस्य रखते हैं। जातिगत भेदभाव के पश्चात् प्रदेशगत भेदभाव (क्षेत्रवाद) के आधार पर हम स्वयं को विभाजित कर चुके हैं। परिचय पूछने पर हममें से ही कुछ स्वयं को बंगाली, मद्रासी, गुजराती, महाराष्ट्रियन (मराठी), बिहारी आदि कहते हैं। यानी हम अपना भारतीय छोड़कर सब होना स्वीकार करते हैं। क्यों? जबकि पहले हम सभी भारतीय हैं, इसके बाद अन्य कुछ।

हमें पैंसठ साल स्वतंत्र हुए हो चुके हैं, लेकिन आज तक हमारा वर्ग-विहीन राष्ट्र निर्माण एक स्वप्न की तरह ही है। जिसका मूल कारण वोटों की राजनीति है जो कभी विशेषाधिकार, कभी आरक्षण और कभी अल्पसंख्यक सुरक्षा आदि का मुखौटा पहनकर हर पांच वर्षों में हमारे सामने आती है। उदाहरण के लिए प्रत्याशी धर्म और जाति के नाम पर वोट मांगते हुए देखे गए। दुर्भाग्य तो यह है कि देश का युवा वर्ग इस प्रकार की राजनीति में खुलकर भाग ले रहा है। हमारे देश के युवाओं को इस प्रकार की दूषित राजनीति में भागीदारी से बचना होगा और संभवतः इसका पुरजोर विरोध करना होगा, परंतु ऐसा संभव नजर नहीं आता। क्योंकि देश के कुछ राजनेता युवाओं को इस दूषित राजनीति में घसीट रहे हैं, जो कि शर्मनाक है।

वर्तमान की इस दूषित राजनीति ने भाषाई राज्यों की एक नई विकट समस्या उत्पन्न कर दी है। जिससे प्रादेशिक वैमनस्य और अलगाववाद को प्रोत्साहन मिला है। बल्कि इतना ही नहीं, नित्य ही नए राज्यों के निर्माण की मांगें उठ रही हैं। यह हमारे देश की एकता एवं अखंडता के सम्मुख एक बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न है। साथ ही बेरोजगारी की समस्या ने हमारे देश में असंतुष्ट युवकों की एक फौज-सी तैयार कर दी है और अब ये रोजगार न मिलने की स्थिति में हिंसा का रास्ता अपना रहे हैं तथा साथ ही वह अपहरण, लूट-पाट, हत्या, बलात्कार या अन्य असामाजिक कृत्य से समाज को आतंकित कर रहे हैं। जिसके फलस्वरूप हमारा समाज दिन प्रतिदिन दूषित हो रहा है। जिसके फलस्वरूप समाज में दहशत का माहौल बना हुआ है।

आज हम अपने ही इस देश में स्वयं को सुरक्षित महसूस नहीं कर रहे हैं। विशेषकर स्त्रियां और मासूम बच्चे इस दहशत के सबसे ज्यादा शिकार होते हैं। इस समस्या का हल युवा-समुदाय ही कर सकता है। जब तक देश के नौजवान संगठित होकर सामाजिक समस्याओं के विरुद्ध खड़े नहीं होंगे या संघर्ष नहीं करेंगे तब तक यह समस्याएं यथावत बनी रहेंगी।

समाज में एक अन्य कुप्रथा सदियों से चली आ रही है और इसका बीभत्स रूप हमारे समक्ष है, वह है दहेज-प्रथा। विडंबना यह है कि जितना हमारा शैक्षिक स्तर बढ़ता जा रहा है उतनी ही दहेज प्रथा की समस्या हमारे समाज में बढ़ रही है। जिसके जिम्मेदार समान रूप से देश के सभी युवक/युवतियां हैं। जब तक हम

सभी इस समस्या के विरुद्ध संगठित होकर खड़े नहीं होंगे तब तक ऐसे ही हमारे पारिवारिक जीवन को अभिशप्त करते रहेंगे। आज की इस इक्कीसवीं सदी में भी दहेज के नाम पर बहुओं को शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है, हत्या की जाती है और उन्हें आत्महत्या के लिए मजबूर किया जाता है। इस कुप्रथा से समाज का हर वर्ग प्रभावित हो रहा है। दहेज प्रथा के रहते व्यक्तिगत रूप से हमारा समाज कभी सुख-शांति प्राप्त नहीं कर सकता। यदि प्रत्येक युवक दहेज रहित विवाह करे तथा युवतियां दहेज लेने या मांगने वाले परिवार की बहू बनने से मना कर दें तो वह दिन दूर नहीं, जब यह समस्या इतिहास की वस्तु बनकर रह जाएगी।

इन सबके साथ ही आज सर्वाधिक ज्वलंत मुद्दा है–भ्रष्टाचार का। अनेक क्षेत्रों में चलने वाले घोटालों ने देश की आर्थिक रीढ़ तोड़ डाली है। जिसका सारा बोझ आम लोगों पर ही पड़ रहा है। भ्रष्टाचार रूपी दीमक हमारे देश को दिन प्रतिदिन खोखला करती जा रही है। अभी हाल ही में कुछ (सरकारी/गैर सरकारी) विभागों में करोड़ों अरबों रुपयों के घोटालों का पर्दाफाश हुआ। ऐसी हालत में हमारा देश कभी प्रगति नहीं कर सकता और न ही किसी व्यक्ति का व्यक्तिगत विकास ही संभव है।

अंतिम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वर्तमान समय में स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छंदतावाद ने जोर पकड़ लिया है। आज का व्यक्ति आजादी के नाम पर अनुशासनहीनता को बढ़ावा दे रहा है और यह अनुशासनहीनता सर्वाधिक विद्यार्थियों में देखने को मिल रही हैं। विद्यार्थियों/युवाओं संबंधी इस प्रकार की अनुशासनहीनता से उपजी ऐसी कई दुर्घटनाएं समाचारों में पढ़ी व देखी जा सकती हैं।

देश को विकास की राह पर ले जाने का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व युवाओं का है। हम जानते हैं कि यह कार्य कठिन जरूर है परंतु असंभव नहीं। युवा वर्ग हमेशा से ही असंभव को संभव बनाते आए हैं। इसके लिए उनको चाहिए कि वो अपनी शक्ति/ऊर्जा को सकारात्मक कार्यों में लगाएं। इस कार्य में उचित शिक्षा ही युवाओं को नई दिशा प्रदान कर सकती है। शिक्षा के अभाव में यह कार्य असंभव है।

देश के विकास के लिए उक्त समस्याओं के निराकरण हेतु शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। समस्यामुक्त व एक बेहतर समाज के निर्माण का स्वप्न लेकर हमारे युवकों को व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठना पड़ेगा। क्योंकि युवाशक्ति संपूर्ण राष्ट्र की शक्ति की परिचायक है और इस बात का इतिहास भी गवाह है कि जब-जब जिस देश की युवा शक्ति जाग्रत हुई है तो उस राष्ट्र ने चहुंमुखी विकास किया है। इसी संदर्भ में एल्फ्रेड एडलर का कहना है कि 'शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य साहस है।' साहस के साथ अपनी शिक्षा के उद्देश्य को सार्थक करना हमारा परम कर्तव्य होना चाहिए। तभी देश का विकास सही दिशा में हो पाएगा।

अपने देश के युवाओं को यह पंक्तियां समर्पित है–

युवा राष्ट्र की अमर संपदा, युवा क्रांति के संवाहक हैं।
भारत के संस्कार सिखाएं, युवा राष्ट्र का संचालक है।।

❐

मां का कर्ज : बेटे का फर्ज

हीरालाल मालू

एक गांव में सोहनलाल नाम के सेठ अपने परिवार के साथ आराम से जीवनयापन कर रहे थे। अचानक सेठजी बीमारी से ग्रस्त हो गए। जो कुछ धनार्जन किया था वह बीमारी में खर्च हो गया और अचानक 6 वर्षीय पुत्र एवं पत्नी को छोड़कर संसार से विदा हो गए। सेठजी की धर्मपत्नी सुशीला अकेली रह गई। सुशीला ने चिंतन किया कि पति के स्वर्गवास के पश्चात् परंपरा के अनुसार अगर नौ माह तक घर के कोने में रहूंगी तो घर का कार्य कैसे चलेगा। सुशीला ने पारिवारिकजनों के मध्य अपनी व्यथा को प्रकट करते हुए कहा कि मेरे पास कुछ नहीं है। ऐसे समय में आपकी सहायता की आवश्यकता है, नौ माह तक घर में बैठने से बच्चे का लालन-पालन अर्थ के अभाव में कैसे कर पाऊंगी? मगर कोई सहायता करने के लिए तैयार नहीं हुआ। संसार का स्वरूप भी ऐसा है–

सुख ना साथी स्वार्थ साधवा, सगा बनी उभराय,
कोण पोतानुं कोण परायुं दुख मां सहु समजाय,
तू वीर वीर पुकार, छे स्वारथियो संसार।।

'जब पास में पैसा होता है तब तो सभी आते-जाते रहते हैं, संबंधी बताकर गौरव की अनुभूति करते हैं, पर दुःख के समय में सहायता करने वाले विरले ही होते हैं, अपने व पराये का एहसास दुःख के समय में ही होता है।'

सभी संबंधियों ने सुशीला से कहा कि तुम सवा महीने तक घर में रहो, हम तुम्हारी व्यवस्था कर देंगे, बाद में अपना कार्य स्वयं करके अपने पुत्र का लालन-पालन करना।

सुशीला ने कार्य प्रारंभ करके अपने सुपुत्र सुमन की शिक्षा शुरू करवाई। सुमन का पूरा ध्यान रखना, उसे किसी चीज की कमी नहीं होने देना, उसकी दैनिक दिनचर्या के महत्त्वपूर्ण अंग बन गए। धीरे-धीरे सुमन ने अपनी कुशाग्र बुद्धि से अध्ययन के क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर डॉक्टर की उपाधि को प्राप्त किया। सुमन का विवाह निर्मला (बी.ए.) से हो गया। सुशीला को प्रसन्नता हुई कि अब मेरा अच्छा समय आ गया है पर, धीरे-धीरे सुशीला की सारी आशाएं बुझ गईं। निर्मला को अपनी पढ़ाई का व पति

के डॉक्टर होने का अहंकार होने लगा। सुमन भी निर्मला में पूरा पागल हो गया। सुमन ने निर्मला की इच्छाओं की संपूर्ति के लिए पैसे को पानी की तरह बहाना शुरू कर दिया। निर्मला के उग्र स्वभाव के कारण सासू मां भयभीत रहने लगी। वह जानती थी कि–

क्रोध थी मूढ़ता आवे, मूढ़त स्मृति न हरे,
स्मृति लोपे बुद्धिनाश, बुद्धि नाशे विनाश छे।।

–क्रोध से लज्जा चली जाती है, शत्रुता आती है तथा एक दिन वह सर्वनाश का कारण बन जाती है।

एक दिन एक भिखारी ने सुमन के दरवाजे पर दस्तक दी और खाने के लिए हाथ पसारे। यह निर्मला को अच्छा नहीं लगा और उसने गुस्से में भिखारी को बाहर जाने के लिए कहा। यह देखकर सुशीला के मन में दया के भाव उमड़ने लगे। उसे लगा कि दरवाजे पर कोई याचक आ जाए तो सहायता करना मनुष्य का कर्तव्य होता है। इसी भावना को लेकर वह अंदर गई और दो रोटी लाकर भिखारी को देते हुए जाने को कहा। सुशीला को मालूम था कि गरीब की हाय बुरी होती है। भिखारी रोटी लेकर चला गया मगर निर्मला के तेवर तेज हो गए और वह सासू से झगड़ने लगी। सुशीला ने निर्मला को दान के महत्त्व को समझाने का प्रयत्न करते हुए कहा कि आज तुम्हारे पास तो बहुत कुछ है, जब मेरे पास कुछ भी नहीं था तब भी कोई भिखारी द्वार से खाली नहीं जाता था। क्या तुम्हारे माता-पिता ने गरीबों की सहायता करना तुम्हें नहीं सिखाया?

यह बात सुनते ही निर्मला आग बबूला हो गई। वह अपने कमरे में आकर उदास होकर बैठ गई। सुमन ने घर में आते ही निर्मला को कमरे में उदास देखकर कारण पूछा तो निर्मला ने बताया कि आज तुम्हारी मां ने मुझे ही नहीं, मेरे माता-पिता को जी भर के गालियों की बौछार की। अब मैं एक क्षण भी यहां नहीं रहूंगी। सुमन ने निर्मला की बात सुनकर अपनी मां के पास जाकर चोटी पकड़कर कहा कि निकल जाओ मेरे घर से। तुमने ऐसे शब्द कहकर निर्मला का अपमान किया है। बेटा उन क्षणों को भूल गया—

दीकरा काजे देव मनावे मां बापो दिनरात,
दीकरा मोटा थाता मारे, मां बायो न लात,
तू वीर वीर पुकार, छे स्वारथीयो संसार।।

जिस मां ने अपना खून पसीना एक कर उसे पढ़ाया-लिखाया, मेहनत-मजदूरी कर दिन-रात एक किया, उसी लड़के ने चोटी पकड़कर मां को बाहर निकाला। सुशीला के लिए वह असहनीय क्षण था। मां ने बाहर निकलते हुए कहा कि तुम्हारी शादी के पश्चात् मैंने बहुत सहन किया। मैं घर की इज्जत के खातिर यहां जैसे-तैसे पड़ी हुई थी, अब तुम दोनों यही चाहते हो कि मैं यहां से चली जाऊं तो चली जाती हूं। यदि मेरे रहने से तुम्हें तकलीफ होती है तो मैं तुम्हारी तकलीफ कैसे देख सकती हूं। मैं तेरी मां जो ठहरी। तुम दोनों सुखी रहो, तुम्हारे सुख में ही मां का सुख समाया हुआ है।

मां अपनी गठरी लेकर चल पड़ी। औरतों के पीछे आज कई लोग अपने माता-पिता का भी अपमान करते शर्म महसूस नहीं करते। सुमन अपनी औरत का गुलाम बन गया, उसने मां की बात को भी नहीं सुना और अपनी औरत के कहने से अपनी जन्मदात्री मां को घर से बुढ़ापे में निकाल दिया। सुशीला फिर से मेहनत-मजदूरी करके अपना भरण-पोषण करने लगी। एक अंधेरी कोटरी किराए पर लेकर दिनभर पड़ोसियों के यहां काम करके अपने दिन व्यतीत करने लगी। दूसरे लोग कहते–'माजी! तुम्हारा पुत्र तो डॉक्टर है, तुम यहां क्यों रहती हो, दिनभर क्यों मजदूरी करती हो?' सुशीला कहती–'भजन तो अकेले में ही अच्छे लगते हैं।' उसने किसी को भी नहीं कहा कि मेरे पुत्र ने मुझे घर से बाहर निकाल दिया।'

अकस्मात् सुशीला एक दिन बीमार हो गई, चलने-फिरने की स्थिति नहीं रही। पड़ोसियों ने सुशीला को डॉक्टर सुमन को दिखाया। सुमन ने दूसरे मरीजों की तरह अपनी मां को देखा, दवाई दी। आठ दिन तक वह अस्पताल में भरती रही। पड़ोसी उनके पास रहते, सेवा करते मगर सुमन ने मां को यह भी नहीं पूछा कि मां कैसी

हो? घर चलो। आठ दिन बाद सुशीला का स्वास्थ्य ठीक हुआ। जब वह अपनी कुटिया में जाने लगी तो सुमन ने दवाई व चिकित्सा का बिल उसे पकड़ा दिया। मां बिल को देखकर आश्चर्यचकित रह गई। उसने कहा–'डॉ. साहब! घर जाकर बिल का भुगतान करूंगी।' सुशीला ने चिंतन किया कि दवाई का बिल उसे अवश्य ही देना चाहिए, पर मेरा बिल भी तो अभी तक बाकी है। उसे मैं वसूल क्यों नहीं करूं? यह चिंतन करके सुशीला ने एक सफेद कागज लिया, उस पर अपना नाम एवं पता लिखकर एक बिल बनाया। उसमें लिखा था–

'डॉ. सुमन! तुम्हें गर्भ में रखने के दस हजार रुपए, जन्म देने के दस हजार रुपए, शिक्षा व विवाह के दस हजार रुपए–कुल मिलाकर तीस हजार रुपए में से अपनी दवाई के रुपए काटकर बाकी रुपए मुझे मेरे पते पर भेज देना।'–यह लिखकर कागज पड़ोसी के हाथ डॉक्टर को भिजवा दिया।

डॉ. सुमन ने अपनी मां द्वारा प्रेषित पत्र के साथ बिल पढ़ा तो उसे अपनी भूल का एहसास हुआ। उसे अनुभव हुआ कि मेरी मां ने मेरे लिए क्या-क्या नहीं किया और मैंने उनके साथ कैसे निम्न स्तर का बर्ताव किया। वह उसी क्षण अपने घर पहुंचा और अपनी पत्नी निर्मला से कहा कि चलो हम माताजी से क्षमायाचना कर ससम्मान उन्हें घर लेकर आएं।' इस पर निर्मला ने कहा–'सुमन! आज तुम्हें क्या हो गया, जो ऐसी बातें कर रहे हो।'

डॉ. सुमन ने आक्रोशभरे स्वरों में अपनी पत्नी निर्मला से कहा–'अब तुम मेरी मां के बारे में एक शब्द भी नहीं बोलोगी। अगर मेरी मां की सेवा नहीं कर सको तो तुम घर से निकल जाओ।' निर्मला समझ गई कि अब मेरी किसी बात का असर इन पर नहीं होने वाला है। उसने कहा–'आपकी मां मेरी मां है। मैं इनकी सेवा अत्यंत ही आदर भाव से करूंगी।'

मां द्वारा प्रेषित पत्र में कुटिया का पता था, उसी पते पर पहुंचकर सुमन मां के चरणों में सिर रखकर मां से प्रार्थना करता है–मां! मुझे क्षमा कर दो। तुमने किन परिस्थितियों में मेरा लालन-पालन किया, इसका एहसास नहीं था। आज तुमने मेरी आंखें खोल दी! मां! तुम मेरी कितनी अच्छी मां हो, मेरे लिए तुमने कितनी विषम परिस्थितियों को झेलते हुए कष्ट सहन किए व इस योग्य बनाया, पर मैं कैसा कृतघ्न निकला कि तुम्हारा अपमान कर असह्य दुःख पहुंचा दिया। मैं यह भूल ही गया कि—

'लाखों कमाता हो भले, मां-बाप जेना
ना ठर्या ऐ लाख नह पिण राख छे।
ए मानवुं भलशो नहीं, भूलो भले
बीजु बंधु, मां-बाप ने भूलशो नहीं।।
अगणित छे उपकार, ऐना अह विशरसो नहीं'

सुमन ने अपने अश्रुपूरित नयनों से कहा–'मां! मैं अपराधी हूं, मुझे क्षमा करो। निर्मला की बातों में आकर मैंने तुम्हारा अपमान ही नहीं किया वरन घोर अपराध भी किया है। अब कैसे मैं इस पाप से मुक्त हो सकूंगा। तुम्हारा बिल चुकाने के लिए मैं अपनी चमड़ी के जूते भी तुम्हें पहना दूं तो भी उससे मैं उऋण नहीं हो सकता। चलो गाड़ी में बैठो, घर चलो। अब मैं तुमसे अपने से अलग नहीं कर सकता। निर्मला ने भी अपनी भूल को स्वीकार किया। एहसास दिलाया कि हम आपके साथ रहना चाहते हैं।

दोनों की बात सुनकर मां की ममता पिघल गई। वह गाड़ी में बैठकर घर रवाना हो गई। इस प्रकार दृष्टि परिवर्तन से, घर का वातावरण खुशहालमय हो गया। सभी आनंद से रहने लगे।

अभिमान का कषाय जब तक व्यक्ति के इर्द-गिर्द रहता है तब तक हिताहित का स्मरण नहीं रहता। उसके टूटते ही उसे हिताहित व दायित्व का स्मरण हो आता है। हम अपने कर्तव्य को समझें और जागरूक रहें। ❐

इधर जूं तो उधर आतंकी

छत्रसिंह बच्छावत

अपने ग्राम चाड़वास (राजस्थान) से कुछ ही दूरी पर सुजानगढ़ में होने वाले एक प्रोग्राम में भाग लेने की पूर्व-संध्या पर मैंने सोचा कि ग्रेजुएट केशू नाई के प्रसिद्ध ब्यूटी पार्लर (सैलून) में जाकर क्यों न जरा केश-प्रदेश का सुधार करा लूं? जैसे ही मैं बाल कटाने कुर्सी पर बैठा, पानी का फव्वारा सिर के चारों ओर चलने लगा तो केशु नाई की आंखें मेरे सिर में 'जूं' देखकर ऐसे चमक उठी जैसे निहत्थे अपराधी को देखकर किसी पुलिसकर्मी की चमकती है। उसने लपक कर रेंग रही जूं को अपनी गिरफ्त में लेने का प्रयास किया, पर व्यर्थ।

देखते ही देखते जूं कान से लेकर कान तक फैले भीड़-भाड़ भरे केश-प्रदेश में ओझल हो गईं। वह क्या है कि छत्तीसगढ़ प्रवासी होने के कारण इन महीनों में मैं और राज्य सरकार तथा भारत सरकार तीनों ही परेशान हैं। न इधर जूं पकड़ में आ रही, न उधर मुआ खूंखार आतंकवादी नक्सली पकड़ में आ रहा; जो जगह जगह आंख मिचौली का खेल खेल रहा है। सिवाय सिर खुजलाने के कोई चारा नहीं। मैंने केशू से कहा, 'रहने दो भाई, जैसे उस नक्सली को पकड़ पाना मुश्किल है, वैसे ही जूं को गिरफ्तार करना तुम्हारे वश में नहीं है।

मेरी बात सुनते ही केशू ने फिर पानी का एक फव्वारा मेरे सिर पर मारते हुए कहा–'कमबख्त जायेगी कहां? चप्पा-चप्पा छान मारूंगा। अपनी अंगुलियों को मानो सर्च वारंट जारी करते हुए वह ललकारा कि जरूरत पड़ने पर इस घने केश-प्रदेश को छांट दूंगा, कहां छुपेगी नामुराद? उसके चेहरे का दृढ़भाव और हाथ में उस्तरे को देख मेरे सिर ने मौन स्वीकृति दे दी किंतु अंतर्मन सहम कर रह गया। कहीं ऐसा न हो कि जूं ढुंढ़ाई में बचपन से अभी तक संवारी हुई मेरी सफेद केश-संपदा उजड़ जाये और मैं डेविड या अनुपम खेर-सा नजर आऊं।

केशू मेरी झिझक भांप गया, बोला,'भाईजी ऊपर वाला सिर्फ सिर बना बना कर छोड़ देता है, उसे सजा-सजाकर सुंदर बनाने का काम तो हमारे जिम्मे ही होता है, आप तनिक भी चिंता न करें। इतने में केशू के कैंची-कंघे मेरे सिर पर उगी हुई केशराशि में घुसकर कहर-सा बरपाने लगे। भगोड़ी जूं का कहीं अता-पता नहीं था, अलबत्ता वह लुका-छिपी करती रही। कभी इधर से रेंग कर उधर के केश-प्रदेशों में संदेश देती रहती जैसे आदिवासी लोग नक्सलियों को खबर भेजते हैं। सीटी, ढोल और तुड़े की आवाज सुनकर नक्सली जिस तरह सतर्क हो जाते हैं उसी तरह जूं जो 108 अंडे देती रहती है, भी अपने परिवार को संकेत देने के लिए परंपरागत तौर-तरीकों का इस्तेमाल करती है।

आदिवासियों द्वारा धीमी-धीमी आवाज में सीटी बजाने का मतलब है—सतर्क हो जाएं। सीटी की मध्यम आवाज यानी आसपास मौजूद लोग एकत्र हों। सीटी की तेज आवाज का अर्थ है हमले के लिए मोर्चा लेना। फिर ढोल की आवाज का मतलब है कि सड़क के किनारे के गांव में पुलिस की आमद। अंत में पशु-पक्षियों की आवाजें करना यानी इलाके में आगे बढ़ चुकी है पुलिस। मानव विज्ञानी डा. के.के. झा के मुताबिक आदिवासी उल्लिखित रूप से नक्सलियों को आगाह कर देते हैं। खास रंग के कपड़े घरों की छत या ऊंचे पेड़ पर टांग कर उसी तरह नक्सलियों को सतर्क करते हैं जिस तरह जूं को घेरने के लिए पानी के फौव्वारे और औजार का इस्तेमाल।

अब केशू के शेव बम में सजे शस्त्र सेना के सदस्य बारी-बारी से आकर मेरे सिर पर अपना प्रदर्शन करने लगे। घमासान कांट-छांट के बीच बालों के गुच्छ रह-रह कर जमींदोज हो रहे थे। मेरी गोद में बिखरे पड़े सफेद बालों में तनिक भी हलचल होती तो मेरी और केशू की नजरें जूं को खोजने लग जाती। बीच-बीच में केशू के सधे हाथ मेरी गरदन और सिर का मर्दन करना भी नहीं भूलते। वैसे कैंची-कंघे मेरे घने केश-प्रदेश में अंदर तक घुसकर खुरापाती तत्त्व से बेशक रू-बरू हो आते, पर दुश्मन अब तक केशू की पकड़ से बाहर था।

मेरा व्यथित चेहरा देखकर केशू ने दिलासा दिलाई कि भाईसा घबराइये नहीं। मैंने एक बार संस्कार चैनल में गुरु महाश्रमणजी को यह कहते हुए सुना है कि मोह एक राजा है। उसके सैनिक हैं अहंकार और ममकार। अज्ञान और मोह का क्षय होते ही अशांति धराशायी हो जायेगी। माया को एक दिन आसक्ति के छोटे से विरक्ति के छोर तक आना ही पड़ेगा। भगोड़ी जूं भले ही अभी पकड़ में न आये, अंततः उसका भी हाल-बेहाल होना है।

सारे प्रयासों के बाद भी जब केशू को सफलता की किरण दूर तक नजर नहीं आई तो अंततः उसने नार्को टेस्ट की तरह जीरो मशीन हाथ में ली ताकि कुछ निष्कर्ष निकलने की आशा में खोपड़ी का ढंग बेढंगा किया जाए।

ऐसी खुरापाती सोच को भांपकर पास ही दाढ़ी बना रहे मेरे दोस्त ने केशू को समझाया कि यह क्या कर रहे हो? तिहाड़ जेल में उतनी सुरक्षा के बीच जब कोई नामी अपराधी चकमा दे जाता है तो इस आतंकवादी जूं को पकड़ पाना और अधिक मुश्किल है।

सच मानिये, ये सब बातें सुनकर और हरकतें देखकर मेरी रूह कांप गई और तुरंत ही हम तो सिर पर पांव रखकर भाग लिये, यह सोचकर कि माया की दुर्जेय सेना संसार में सब जगह फैली हुई है। अतृप्त काम ही इस सेना का सेनापति है और छल तथा पाखंड उसके बलवान योद्धा हैं। अब कोई जादुई चमत्कार ही उस माया की आसक्ति को मिटा सकेगा।

आज भी अलबत्ता कातिल नजरें पीछा कर रही हैं इधर जूं का, उधर आतंकवादी नक्सली का। ❑

150वें मर्यादा महोत्सव पर

महासभा के आयोजित कार्यक्रम

श्री कमल कुमार दुगड़ का महासभा के अध्यक्ष के रूप में मनोनयन

श्री बिमल कुमार नाहटा बने प्रधान न्यासी एवं श्री विनोद बैद बने महामंत्री

गंगाशहर में आयोजित 150वें मर्यादा महोत्सव के पावन अवसर पर जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के तत्त्वावधान में कई कार्यक्रम आयोजित किए गए, जो तेरापंथ समाज की सांगठनिक सुदृढ़ता और सामाजिक विकास की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखते हैं और तेरापंथ के श्रावक-श्राविकाओं के आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नयन की दिशा में महनीय भूमिका निभाते हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है—

महासभा की 100वीं वार्षिक साधारण सभा

महासभा की 100वीं वार्षिक साधारण सभा दिनांक 05 फरवरी, 2014 को सायं 6.00 बजे आशीर्वाद भवन, गंगाशहर में आयोजित की गई। तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष श्री हीरालाल मालू, प्रधान न्यासी श्री कमल कुमार दुगड़, महामंत्री श्री बिनोद चोरड़िया ने संपूर्ण महासभा परिवार की ओर से पूज्यचरणों में अपने भाव सुमन अर्पित किए।

महासभा के इतिहास में आज का दिन स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। क्योंकि आज महासभा की 100वीं साधारण सभा है और पूज्य आचार्य श्री महाश्रमण जी प्रेरणादायी सान्निध्य। महासभा आचार्यप्रवर की दृष्टि की आराधना करते हुए अपनी सभी प्रवर्धमान परियोजनाओं को सर्वोच्च सोपान तक पहुंचाने हेतु पूरी निष्ठा एवं श्रद्धा के साथ कार्य करती रहेगी।

परम श्रद्धेय आचार्यवर ने अपना पावन पाथेय प्रदान करते हुए कहा कि जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा शतायु संस्था है। सौ वर्षों का जीवनकाल किसी भी संस्था और व्यक्ति के लिए एक महत्त्वपूर्ण कालावधि होती है। सौ वर्षों का सिंहावलोकन किया जाए तो महासभा ने इस सुदीर्घ अवधि में अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। परमपूज्य गुरुदेव तुलसी का लंबा कार्यकाल महासभा के लिए काफी उपयोगी रहा। महासभा का सौभाग्य है कि उसे महर्षियों का आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

परमपूज्य कालूगणी के युग में जन्मी यह संस्था विकास की दिशा में आगे बढ़ी है। समालोचना की दृष्टि से वार्षिक अधिवेशन का अपना महत्त्व है। महासभा को मैं तेरापंथ समाज की मां के रूप में देखता हूं। यह तेरापंथ समाज की प्रतिनिधि संस्था है, सर्वोच्च संस्था है। इसके बराबर तेरापंथ समाज में कोई अन्य संस्था नहीं दिख रही है। यह ऐसी संस्था है, जो समाज के संरक्षण और संपोषण पर ध्यान देती है। इसका अपना नेटवर्क है, बहुत सारी सभाएं इसके साथ जुड़ी हुई हैं, कार्यकर्ता भी बहुत ही समर्पित भाव से कार्य करते हैं। यह संस्था खूब अच्छा कार्य करती रहे, तेरापंथ समाज

को आध्यात्मिक-धार्मिक संरक्षण इस संस्था से प्राप्त होता रहे, यही शुभाशंसा है।'

महामंत्री श्री बिनोद कुमार चोरड़िया ने विगत अधिवेशन की कार्यवाही का वाचन एवं वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, कोषाध्यक्ष श्री सुरेन्द्र कुमार बोरड़ ने विगत वर्ष के आय-व्यय का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया, जिसे सदन द्वारा सर्वसम्मति से पारित किया गया। आगामी वर्ष हेतु अंकेक्षक के रूप में मैसर्स एस. एम. डागा एंड कं. की पुनर्नियुक्ति की गई एवं उनकी मानद सेवाओं हेतु उनके प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

इस अवसर पर अन्य कार्यों के अलावा महासभा के अध्यक्ष, न्यास मंडल के अंतर्गत प्रधान न्यासी, सात न्यासी एवं पंच मंडल के अंतर्गत तीन पंचों का चुनाव सौहार्दपूर्ण वातावरण में सानंद संपन्न हुआ। चुनाव प्रक्रिया चुनाव अधिकारी श्री भंवरलाल डागा एवं अतिरिक्त चुनाव अधिकारी श्री मूलचन्द डागा द्वारा संपादित की गई। चुनाव अधिकारी श्री भंवरलाल डागा ने सत्र 2014-16 के लिए सर्वसम्मति से निर्वाचित महासभा के अध्यक्ष के रूप में श्री कमल कुमार दुगड़, प्रधान न्यासी के रूप में श्री बिमल कुमार नाहटा, न्यासी के रूप में श्री प्रकाशचन्द बैद, श्री तुलसी कुमार दुगड़, श्री गौतम सेठिया, श्री ज्योति कुमार बेगानी, श्री जीतमल चोरड़िया, श्री ओमप्रकाश जालान, श्री सोहनलाल धाकड़ तथा पंचों के रूप में श्री भंवरलाल नाहटा, श्री सवाईलाल पोकरणा एवं श्री रतनलाल पारख के नामों की घोषणा की। वार्षिक साधारण सभा का संयोजन महासभा के सहमंत्री श्री जी. भूपेन्द्र कुमार मुथा द्वारा कुशलतापूर्वक किया गया।

महासभा द्वारा दिनांक 2 फरवरी, 2014 से लेकर 04 फरवरी, 2014 तक आयोजित कार्यक्रम

मिलन गोष्ठी

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा द्वारा संबोधन अलंकरण प्राप्तकर्ताओं तथा उनके पारिवारिकजनों की एक मिलन गोष्ठी दिनांक 02 फरवरी, 2014 को आशीर्वाद भवन, गंगाशहर में अपराह्न 3.00 बजे आयोजित की गई, जिसमें महासभा के पदाधिकारिगण, ट्रस्टिगण, देश भर से पधारे संबोधन अलंकरण प्राप्तकर्ता-गण और उनके परिवार के सदस्यों ने भाग लिया।

कार्यक्रम का संचालन करते हुए महासभा के उपाध्यक्ष श्री विमल सुराणा ने कहा कि मिलन गोष्ठी का आयोजन आचार्यप्रवर द्वारा संबोधन प्राप्त श्रावक-श्राविकाओं एवं उनके परिवारजन के मिलन के रूप में किया जाता है। आचार्यप्रवर के मुखारविंद से मिलनेवाला संबोधन अपने आपमें अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और वे व्यक्ति एवं परिवार धन्य हैं जिन्हें यह संबोधन प्राप्त होता है। ऐसे व्यक्तियों एवं परिवारों का जहां मिलन होता है वह कार्यक्रम भी अपने आपमें महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

महासभा के अध्यक्ष श्री हीरालाल मालू ने संबोधन प्राप्त श्रावक-श्राविकाओं एवं परिवार के लोगों तथा महासभा के पदाधिकारियों का स्वागत करते हुए कहा कि गर्व की अनुभूति का दिन है। उन्होंने कहा कि हमारे जीवन में गुरु का स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य के जीवन में से अच्छाइयों को निकालना, उनका अंकन करना और उन्हें महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाना हमारे गुरु का कार्य है। महासभा का सौभाग्य है कि उसे पूज्यवरों द्वारा संबोधन प्राप्त समाज के ऐसे निष्ठावान, समर्पित और सिरमौर श्रावक-समाज को सम्मानित करने का अवसर प्राप्त हुआ है, जिन्होंने पूरे धर्मसंघ तथा समाज की कीर्ति पताकाएं फहराई हैं। इस समाज ने अपनी अनुकरणीय जीवन शैली तथा धर्म के प्रति गहरी निष्ठा और गुरु के प्रति श्रद्धा भावना के द्वारा यह सिद्ध किया है कि यह एक सर्वश्रेष्ठ समाज है। श्री हीरालाल मालू ने कहा कि इस वर्ष जिन्हें संबोधन दिया जा रहा है उनमें से बहुत-से लोग मौजूद नहीं हैं परंतु गुरुप्रवर से संबोधन मिलने के बाद वे अमर हो गये। वे परिवारजन धन्य हैं जिन्हें कोई अलंकरण मिलता है। यह क्रम पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहे, ऐसा प्रयास पारिवारिकजन को करते रहना चाहिए।

महासभा के महामंत्री श्री बिनोद कुमार चोरड़िया ने कहा–गुरुवरों से प्राप्त यह संबोधन हमें अपने गुणों को और भी विकसित करने का अवसर देता है तथा हमारे दायित्वबोध की वृद्धि करता है। उन्होंने कहा कि गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी द्वारा प्रारंभ किया गया संबोधन अलंकरण कार्यक्रम प्रतिवर्ष मर्यादा महोत्सव के अवसर पर आयोजित किया जाता है जिसमें पूज्यप्रवर के सान्निध्य में संबोधन प्राप्तकर्ताओं को सम्मानित किया जाता है, जिससे समाज के श्रेष्ठ श्रावक-श्राविकाओं के जीवन के तप, त्याग, सेवा सहित उनकी गुरुभक्ति, निष्ठा और समर्पण का मूल्यांकन तो होता ही है, साथ ही साथ समाज के समक्ष एक उत्कृष्ट उदाहरण भी प्रस्तुत होता है। उन्होंने कहा कि तेरापंथ धर्मसंघ की श्रीवृद्धि में प्रेरक जीवनवृत्त एवं उज्ज्वल चरित्र से अभिमंडित श्रावक-श्राविकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उनका जीवन आनेवाली पीढ़ियों के लिए रोशनी की मीनार है। उन्होंने कहा कि गणाधिपति तुलसी ने श्रावक-श्राविकाओं का वैशिष्ट्य निरूपित करते हुए उन्हें संघपुरुष के चरणों की संज्ञा दी, शासन की गति-प्रगति का आधार कहा।

महासभा के कोषाध्यक्ष श्री सुरेन्द्र कुमार बोरड़ ने कहा कि महासभा संघीय निर्देश के अनुसार जिन दायित्वों का निर्वहन कर रही है वे संघ और समाज के हित में बहुत ही महत्त्व रखते हैं। उन्होंने महासभा द्वारा संचालित मेधावी छात्र प्रोत्साहन योजना, महासभा शिक्षा सहयोग योजना, ज्ञानशाला आदि के साथ ही आचार्य श्री महाप्रज्ञ की स्मृति में निर्मित स्मारक स्थल, आचार्य महाश्रमण अमृत महोत्सव, आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी वर्ष एवं महासभा शताब्दी वर्ष के अवसर पर एक-सौ तेरापंथ भवनों के निर्माण की योजना की संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की और कहा कि इतना बड़ा कार्य समाज के सभी लोगों के सहयोग के बिना संभव नहीं है। उन्होंने आह्वान किया कि सभी संबोधन प्राप्तकर्ता परिवार संघ तथा महासभा के साथ सक्रिय रूप से जुड़कर विकास में योगभूत बनें। सहमंत्री श्री बजरंग कुमार सेठिया ने संबोधन प्राप्तकर्ताओं का जीवन परिचय प्रस्तुत किया। महासभा के सहमंत्री श्री जी. भूपेन्द्र कुमार मुथा ने इस गोष्ठी के लिए तथा अन्य व्यवस्थाओं में संलग्न सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त किया।

संबोधन अलंकरण समारोह-2014

तेरापंथ धर्मसंघ की पावन धरा गंगाशहर में आयोजित मर्यादा महोत्सव के अवसर पर परम पूज्य आचार्य श्री महाश्रमणजी के सान्निध्य में दिनांक 03 फरवरी, 2014 को जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा द्वारा संबोधन अलंकरण प्राप्तकर्ताओं को सम्मानित करने का कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य प्रवर द्वारा समय-समय पर विभिन्न संबोधनों से अलंकृत देश भर के 101 श्रावक-श्राविकाओं को अलंकृत किया गया।

आचार्य श्री महाश्रमणजी ने इस अवसर पर अपना संबोध देते हुए कहा कि समाज के श्रावक-श्राविकाओं के सद्गुणों, सेवाओं तथा समाज हित में किए गए कार्यों का अंकन करते हुए उन्हें विभिन्न प्रकार के संबोधन प्रदान किए जाते हैं जो समाजोत्थान की दिशा में प्रेरक का कार्य करते हैं और संबोधन प्राप्तकर्ताओं को आत्म साधना के लिए गतिशील बनाते हैं। इन संबोधनों से जहां संबोधन प्राप्तकर्ताओं को सम्मान प्राप्त होता है, वहीं उन पर जीवन, समाज और संघ के प्रति अनेक उत्तरदायित्व भी आ जाते हैं। उनसे अपेक्षा होती है कि उनका सांसारिक जीवन और भी सुंदर बने तथा वे अच्छे कार्यों के प्रति ज्यादा सचेष्ट हों, उनमें धर्म के प्रति अधिक आस्था पैदा हो और वे आत्मोन्नयन की दिशा में अग्रसर हों। आचार्यश्री ने कहा कि संबोधन प्राप्तकर्ताओं को मर्यादा महोत्सव के अवसर पर सम्मानित करके महासभा इतिहास रचती है।

महासभा के अध्यक्ष श्री हीरालाल मालू ने कहा कि आज का दिन श्रावक समाज की सेवा के मूल्यांकन का दिन है। संबोधन प्राप्त करनेवाले व्यक्ति तेरापंथ की कीर्ति पताकाओं को फहराने वाले ऐसे व्यक्तित्व हैं जिनकी धर्मपरायणता तथा संघ एवं संघपति के प्रति निष्ठा, समर्पण और श्रद्धा अद्वितीय है। इनकी निष्ठा, सेवा भावना, तप, त्याग और विसर्जन की विशिष्ट भावना से

यह सिद्ध होता है कि ये समाज के महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं। हमारा समाज इनके जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर उत्कर्ष को प्राप्त करेगा और इनके पदचिह्नों पर चलकर हमारी भावी पीढ़ी अपने जीवन को उन्नत करेगी।

महासभा के महामंत्री श्री बिनोद कुमार चोरड़िया ने संबोधन अलंकरण के महत्त्व का उल्लेख किया और कहा कि समाज के निष्ठाशील, संघ तथा संघपति के प्रति समर्पित, तप, त्याग और सेवा भावनां से युक्त श्रेष्ठ श्रावक-श्राविकाओं को सम्मानित करने की यह परंपरा महासभा के विभिन्न आयोजनों की शृंखला की एक विशिष्ट कड़ी है। पूज्यप्रवर के श्रीमुख से प्रदत्त संबोधन से न केवल संबोधन प्राप्तकर्ता बल्कि परिवारजन एवं समाज भी धन्यता का बोध करता है। महासभा प्रतिवर्ष मर्यादा महोत्सव के अवसर पर पूज्यप्रवर की पावन सन्निधि में संबोधन प्राप्त श्रावक-श्राविकाओं और दिवंगत श्रावक-श्राविकाओं के परिवारजनों को स्मृति चिह्न प्रदान कर सम्मानित कर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करती है। वर्ष 2013 के दौरान श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री महाश्रमणजी द्वारा जिन श्रावक-श्राविकाओं को संबोधन प्रदान किए गए, उन्हें आज के इस विशेष कार्यक्रम में सम्मानित किया जा रहा है। संबोधन प्राप्तकर्ताओं का सचित्र परिचय संबोधन प्राप्तकर्ता पुस्तिका में प्रकाशित किया गया है। यह पुस्तिका एक ओर जहां उनके जीवन को उद्घाटित करेगी वहीं समाज के समक्ष एक अनूठा उदाहरण उपस्थित कर अन्य श्रावक-श्राविकाओं को श्रेष्ठ श्रावकोचित धर्म के पालन हेतु प्रेरित भी करेगी।

अलंकरण प्रदान कार्यक्रम के अंतर्गत प्रबुद्ध श्रावकोत्तम, तपोनिष्ठ श्रावक, महादानी श्राविका, तत्त्वज्ञ श्रावक, श्रद्धानिष्ठ श्रावक, श्रद्धा की प्रतिमूर्ति आदि संबोधनों से अलंकृत श्रावक-श्राविकाओं को महासभा के अध्यक्ष श्री हीरालाल मालू, उपाध्यक्षगण श्री किशनलाल डागलिया, श्री विमल सुराणा, कोषाध्यक्ष श्री सुरेन्द्र कुमार बोरड़ और ट्रस्टी श्री पन्नालाल बैद द्वारा स्मृतिचिह्न प्रदान कर सम्मानित किया गया।

आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी सम्मान समारोह

परम पूज्य आचार्य श्री महाश्रमणजी के पावन सान्निध्य में दिनांक 03 फरवरी, 2014 को सायं 7 बजे जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा द्वारा आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह के कार्य से जुड़े प्रायोजकों, समितियों, सभाओं एवं विशिष्ट सहयोगियों को सम्मानित किया गया।

आचार्य श्री महाश्रमणजी ने इस अवसर पर अपना संबोध देते हुए कहा कि परमपूज्य गुरुदेव तुलसी का जन्म शताब्दी वर्ष हमारे लिए महान प्रेरणा का स्रोत है। आचार्य तुलसी एक महान युगनायक थे, जिन्होंने अणुव्रत जैसा एक महान मंत्र पूरी मानवता के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसका पालन कर व्यक्ति अपने जीवन को तो उन्नत बना ही सकता है, साथ ही परिवार, समाज और राष्ट्र की भी महान सेवा कर सकता है। अणुव्रत आंदोलन के प्रवर्तन के बाद वे लगातार भारत के विभिन्न प्रांतों की पदयात्रा करते रहे और अणुव्रत का प्रचार-प्रसार करते रहे। उनके विचार संपूर्ण मानव जाति को दिशानिर्देश देने वाले थे। आज जिन्हें तुलसी जन्म शताब्दी समारोह में सक्रिय सहभागिता के लिए सम्मानित किया जा रहा है वे दूसरों के लिए प्रेरणास्रोत बनें और अन्य लोग इससे उत्साहित होकर इस दिशा में कार्य करें, यही अपेक्षा है।

महासभा के अध्यक्ष श्री हीरालाल मालू ने आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी वर्ष की विभिन्न परियोजनाओं से जुड़े प्रायोजकों, संरक्षक समिति, परामर्शकों, कार्यसमिति, स्वागत समिति, संयोजकों एवं सभाओं के प्रति अंतर्मन से आभार व्यक्त किया और इस समारोह को पूर्ण सफल बनाने के लिए आह्वान किया।

महासभा के प्रधान न्यासी और आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी के प्रायोजक श्री कमल कुमार दुगड़ ने बीसवीं शताब्दी के युगपुरुष आचार्य तुलसी के बहुआयामी व्यक्तित्व का उद्घाटन करते हुए पूरे तेरापंथ समाज से आह्वान किया कि आचार्य तुलसी के अवदानों से अपने-अपने क्षेत्रों में जन समुदाय को

अवगत कराएं और अणुव्रत जैसे उपक्रम से जन-जन को जोड़ने का प्रयास करें। उन्होंने कहा कि अणुव्रत के माध्यम से देश में चरित्रोत्थान का जो कार्य हुआ है वह सदैव स्मरणीय बना रहेगा। उन्होंने इस कार्य में लगे हुए सभी व्यक्तियों, सभाओं, समितियों, प्रायोजकों एवं सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त किया, जिनके सद्प्रयासों से आज पूरे देश में आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी की धूम मची हुई है।

महासभा द्वारा पुरस्कार प्रदान समारोह

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के तत्त्वावधान में आचार्यश्री महाश्रमणजी के पावन सान्निध्य में दिनांक 04.02.2014 को गंगाशहर में पुरस्कार प्रदान समारोह का कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसमें निम्नलिखित पुरस्कार प्रदान किए गए—

श्रीमती मनोहरी देवी डागा समाजसेवा पुरस्कार

श्री बिमल सिंह सेठिया (सुजानगढ़-बेंगलुरू) को 'श्रीमती मनोहरी देवी डागा समाज सेवा पुरस्कार' के अंतर्गत मोमेंटो, प्रशस्ति पत्र एवं पुरस्कार राशि का चेक प्रदान कर सम्मानित किया गया। श्री सेठिया ने पुरस्कार राशि रु. 1,00,000/- का चेक महासभा की विविधमुखी गतिविधियों हेतु अध्यक्ष महोदय को लौटा दिया।

श्रेष्ठ/विशिष्ट सभा पुरस्कार

देश भर में फैली सभाएं महासभा द्वारा निर्देशित कार्यक्रमों और गतिविधियों को संचालित कर धर्म, अध्यात्म, संस्कृति और समाज सेवा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रही हैं। उनके बीच प्रतिस्पर्धा की भावना विकसित करने के लिए सभाओं द्वारा संचालित प्रवृत्तियों के आधार पर उन्हें 'श्रेष्ठ सभा' और 'विशिष्ट सभा' के रूप में सम्मानित किया जाता है। इस वर्ष साउथ कोलकाता एवं मुंबई सभा को संयुक्त रूप से 'श्रेष्ठ सभा' एवं फरीदाबाद तथा नोखा को 'विशिष्ट सभा' के रूप में स्मृति चिह्न एवं पुरस्कार राशि का चेक प्रदान कर सम्मानित किया गया। शेष 8 सभाओं दक्षिण हावड़ा, दिल्ली, हैदराबाद, उधना, सिलीगुड़ी, केसिंगा एवं पालघर को सभा प्रोत्साहन पुरस्कार स्वरूप मोमेंटो प्रदान कर सम्मानित किया गया।

ज्ञानशाला पुरस्कार

इस अवसर पर श्री हीरालाल मालू ने ज्ञानशाला के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा कि इसके द्वारा समाज के बच्चों को संस्कारित और सुशिक्षित किया जाता है। बचपन से ही बालक-बालिकाओं में चरित्र के विकास, संयम के पाठ, सेवा की शिक्षा और देव, गुरु, धर्म के प्रति निष्ठा जाग्रत करना इसका मूल उद्देश्य है। क्योंकि सद्संस्कारों से युक्त बच्चे ही अच्छे नागरिक और मानव बन सकते हैं। उनका आचार-व्यवहार, जीवन शैली और सोच जितनी अच्छी होगी हमारा परिवार, समाज और देश उतना ही मजबूत और उन्नत होगा। उन्होंने ज्ञानशाला के राष्ट्रीय संयोजक श्री सोहनराज चोपड़ा के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करते हुए सभी संयोजकों, सभाओं, तेरापंथ युवक परिषद, महिला मंडल, प्रशिक्षकों को साधुवाद दिया जो ज्ञानशाला के संचालन में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं।

महासभा के महामंत्री श्री बिनोद कुमार चोरड़िया ने ज्ञानशाला द्वारा किए जा रहे संस्कार निर्माण के कार्य की सराहना की और श्रेष्ठता अर्जित करने वाली ज्ञानशाला को बधाई दी।

ज्ञानशाला पुरस्कार के अंतर्गत श्री अपार्टमेंट-दक्षिण हावड़ा को श्रेष्ठ ज्ञानशाला, दहिसर-मुंबई एवं टॉण्डियारपेट-चेन्नई को विशिष्ट ज्ञानशाला, गुवाहाटी एवं सायन कोलीवाड़ा-मुंबई को उत्तम ज्ञानशाला के रूप में सम्मानित किया गया। साथ ही 6 श्रेष्ठ प्रशिक्षक, 3 वरिष्ठ प्रशिक्षक, श्रेष्ठ संचालक संस्था, ज्ञानशाला सहयोगी, 5 श्रेष्ठ ज्ञानार्थी तथा विज्ञ, विशारद एवं स्नातक में उत्तीर्ण प्रथम तीन स्थान प्राप्त करने वाले एवं ज्ञानशाला ज्ञानार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण ज्ञानार्थी को मोमेंटो प्रदान कर सम्मानित किया गया। ❑

मोक्ष तत्त्व : एक विमर्श

मुनि मदन कुमार

भारतीय चिंतन में मोक्ष परम मंगल है और जीवन का परम साध्य है। वह धर्माराधना की अंतिम निष्पत्ति है। धर्म और मोक्ष में कार्य-कारण संबंध देखा जा सकता है। धर्म कारण है और मोक्ष कार्य अथवा धर्म साधन है और मोक्ष साध्य। मोक्ष अपरिमित सुखों की खान है, इसलिये उसे समस्त पदार्थों में सर्वोत्तम पदार्थ कहा गया है। मोक्ष सर्वगुण संपन्न है और उसके सुख असीम एवं अनंत है। सूत्रकृतांग में कहा गया है–'ऐसी संज्ञा मत करो कि मोक्ष नहीं है, पर ऐसी संज्ञा करो कि मोक्ष हैं।' स्थानांग में कहा गया है–'मोक्ष को अमोक्ष और अमोक्ष को मोक्ष श्रद्धान करने वाला मिथ्यात्वी होता है।' बंध है तो मोक्ष क्यों नहीं? उत्तराध्ययन और स्थानांग में नव पदार्थ बतलाये गये हैं। जब बंध सद्भाव पदार्थ है तो उसका प्रतिपक्षी पदार्थ मोक्ष भी सद्भाव पदार्थ है, यह स्वयं सिद्ध है। बंध कर्म-संश्लेष है और मोक्ष कर्म का कृत्स्न-क्षय है। मोक्ष तत्त्व को परिभाषित करते हुए आचार्य पूज्यपाद ने लिखा–'कृत्स्न कर्म वियोग लक्षणो मोक्ष:-मोक्ष का लक्षण संपूर्ण कर्म वियोग है।' आचार्य तुलसी के शब्दों में कृत्स्न कर्म क्षयादात्मन: स्वरूपावस्थानं मोक्ष:-सब कर्मों से छूट जाना और आत्म स्वरूप में अवस्थित होना मोक्ष है।' संक्षेप में बद्ध आत्मा का मुक्त होना ही मोक्ष है। आत्मा जब कर्म मुक्त हो जाती है और अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाती है तो उसे मोक्ष कहते हैं। संपूर्ण कर्मों का क्षय होने से आत्मा की अपने स्वरूप में अवस्थिति का नाम ही मोक्ष है।

मोक्ष का अर्थ है जन्म-मरण की परंपरा का अंत। इसे आगमिक भाषा में अंत:क्रिया कहते हैं। जब तक जीव संसार में रहता है, शरीरयुक्त रहता है। शरीर के साथ जन्म, मरण, जरा, रोग, शोक, दु:ख ओर दारिद्रय का संबंध बना रहता है। मृत्यु काल में प्राणी का स्थूल शरीर छूट जाता है, फिर भी सूक्ष्म शरीर-तैजस और कार्मण उसके साथ लगे रहते हैं। कार्मण शरीर के द्वारा फिर स्थूल शरीर निष्पन्न हो जाता है। अत: स्थूल शरीर के छूट जाने पर भी सूक्ष्म शरीर की सत्ता में जन्म-मरण की परंपरा का अंत नहीं होता। अंतत: स्थूल शरीर के छूट जाने पर भी जन्म-मरण की परंपरा का अंत कहां हुआ? उसका अंत सूक्ष्म शरीर का विसर्जन होने पर होता है। जो व्यक्ति कर्म-बंधन को सर्वथा क्षीण कर देता है उसके सूक्ष्म शरीर छूट जाते हैं। इससे जीवन अशरीरी बन जाता है। यही अंत:क्रिया है और यही मोक्ष है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—इन चारों द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसलिये इनके समवाय को मोक्ष का मार्ग कहा गया है। जैन दर्शन ज्ञान योग, भक्तियोग (श्रद्धा) और कर्म योग (चारित्र और तप)—इन तीनों को संयुक्त रूप में मोक्ष का मार्ग मानता है, किसी एक को नहीं। इस चतुरंग मार्ग को प्राप्त करने वाले जीव ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं। ये चारों मोक्ष प्राप्ति के साधन हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया कि ज्ञान से तत्त्व जाने जाते हैं। दर्शन से उन पर श्रद्धा होती है। चरित्र से आश्रव का निरोध होता है और तप से शोधन होता है। जब आत्म-शोधन परिपूर्णता को प्राप्त कर लेता है तब जीव सिद्ध गति को प्राप्त हो जाता है।

समस्त कर्मों का क्षय होने से यह अपने आत्म-स्वभाव में रमण करने की अवस्थिति है। ज्ञान, दर्शन, और पवित्रता आत्मा का स्वभाव है। इन तीनों की पूर्णता ही मोक्ष है। संवर और निर्जरा धर्म की आराधना से मोक्ष तत्त्व की प्राप्ति होती है। संवर के बीस भेद हैं और निर्जरा के बारह। इन बत्तीस भेदों की आराधना ही धर्म की आराधना है। साधना के क्षेत्र में यही काम्य है। साधक के सारे निरापद और वास्तविक है। ये सुख अनुपम हैं। महान तत्त्ववेत्ता आचार्य श्री भिक्षु ने लिखा—'जो आठों ही कर्मों का अंत कर इस कलकलीभूत-जन्म-मरण व्याधि पूर्ण संसार से मुक्त हो गये हैं तथा जिन्होंने मुक्ति रूपी रमणी के अनंत सुख प्राप्त किये हैं उन्हीं जीवों को अविचल मोक्ष प्राप्त हुआ कहा जाता है। तीनों लोक में उनके सुखों की कोई उपमा नहीं मिलती। उनके सुख शाश्वत और एकधार रहते हैं। उनमें कभी न्यूनाधिकता नहीं होती।'

मोक्षगामी जीव सबसे पहले मोह कर्म को क्षीण करता है और उससे वह वीतराग दशा को उपलब्ध होता है। यही मोक्ष-प्राप्ति का मूलाधार है। मोह कर्म के क्षय के पश्चात् चरम शरीरी मनुष्यात्मा अंतर्मुहूर्त कालखंड में शेष घातीत्रिक का क्षय कर कैवल्य दशा को प्राप्त कर लेता हैं। यह कैवल्य दशा जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम करोड़ पूर्व तक रह जाती है। केवली होने के पश्चात् भवोपग्राही (जीवनधारण के हेतुभूत) कर्म शेष रहते हैं, तब तक वह इस संसार में रहता है और इस स्थिति में वह असिद्ध एवं संसारी कहलाता है।

केवली जब तक सयोगी (मन, वचन और काया की प्रवृत्ति युक्त) रहता है, तब तक उसके ईर्यापथिक कर्म का बंधन होता है। उसकी स्थिति दो समय की होती है। उसका बंध गाढ नहीं होता, निधत्ति और निकाचित अवस्थाएं नहीं होती। इसीलिये उसे 'बद्ध और स्पृष्ट' कहा है। प्रथम समय में वह बद्ध-स्पृष्ट होता है और दूसरे समय में वह उदीरित-उदय प्राप्त और वेदित-अनुभव प्राप्त होता है। तीसरे समय में वह निर्जीर्ण हो जाता है और चौथे समय में वह अकर्म बन जाता है—फिर वह उस जीव के कर्म रूप में परिणत नहीं होता। केवली का यह केवल योगजन्य अथवा नाम मात्र का बंधन होता है। केवली का जीवन काल जब अंतर्मुहूर्त मात्र शेष रहता है, तब वह योग-निरोध (मन, वचन और काया की प्रवृत्ति का पूर्ण निरोध) करता है।

सर्वप्रथम मनोयोग का, फिर वचन योग का और अंत में उच्छ्वास-निःश्वास सहित काय योग का निरोध करता है। इस निरोध-काल में अवगाहना का संकुचन होता है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है—'अंतिम भव में जिसकी जितनी ऊंचाई होती है, उससे त्रिभाग हीन (एक तिहाई कम) अवगाहना सिद्ध होने वाले की होती है।' यहां यह जानना चाहिये कि मुक्त होने वाला जीव शरीर की अवगाहना का तीसरा भाग जो पोला होता है उसे पूरित कर देता है और आत्मा की शेष दो भाग जितनी अवगाहना रह जाती है। यह क्रिया काय योग निरोध के अंतराल में ही निष्पन्न होती है। चौदहवें *गुणस्थान में योग-निरोध* हो जाता है, यह अबंधकारक अवस्था कहलाती है।

योग-निरोध होते ही अयोगी या शैलेशी अवस्था प्राप्त हो जाती है। उसे अयोगी केवली गुणस्थान भी कहा जाता है। न विलंब से और न शीघ्रता से, किंतु मध्यम भाव से पांच ह्रस्वअक्षरों (अ, इ, उ, ऋ, लृ) का उच्चारण करने में जितना समय लगता है, उतने

समय तक अयोगी अवस्था रहती है। इस अवस्था में आत्मा अशैलेशी बन जाती है और शुक्ल ध्यान की सर्वोत्कृष्ट ऊंचाई-सम्मूर्च्छिन क्रिया अनिवृत्ति दशा में पहुंच जाती है।

अयोगी केवली अवस्था के पूर्ण होते ही चार भवोपग्राही कर्म एक साथ क्षीण हो जाते हैं और उसी समय औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर को सर्वथा छोड़कर वह ऊर्ध्व-लोकांत तक चली जाती है। मुक्त आत्मा का ऊर्ध्वगमन ऋजु श्रेणी से होता है, इसलिये *उसकी गति ऋजु होती है। वह एक समय में ही संपन्न* हो जाती है। मुक्त जीव अस्पृशद् गति से ऊपर जाता है। इसका तात्पर्य है–अंतरालवर्ती आकाश-प्रदेशों का स्पर्श किये बिना मोक्ष तक पहुंच जाना। नवांगी टीकाकार अभयदेव सूरि के अनुसार मुक्त जीव अंतरालवर्ती आकाश प्रदेशों का स्पर्श किये बिना ही ऊपर चला जाता है। यदि अंतरालवर्ती आकाश प्रदेशों का स्पर्श करता हुआ वह ऊपर जाये तो एक समय में वह वहां पहुंच ही नहीं सकता। सभी मुक्त जीव एक समय में लोक के अंत में जाकर अवस्थित हो जाते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है–'सिद्ध अलोक से प्रतिहत होते हैं। लोक के अग्र भाग में स्थित होते हैं। मनुष्य लोक में शरीर को छोड़ते हैं और लोक के अग्रभाग में जाकर सिद्ध होते हैं।'

केवलज्ञान सशरीर और अशरीर दोनों ही अवस्थाओं में पाया जाता है। इसलिये केवलज्ञान के दो भेद हो जाते हैं। नंदी सूत्र में इसे स्वीकार किया गया है। वस्तुतः केवलज्ञान एक रूप है किंतु अवस्था भेद से वह द्विरूप हैं। भवस्थ केवलज्ञान और सिद्ध केवलज्ञान-केवलज्ञान के ये दो भेद सापेक्ष हैं। मीमांसक दर्शन का अभिमत है कि मनुष्य सर्वज्ञ नहीं हो सकता। वैशेषिक दर्शन का अभिमत है कि मुक्त जीव में ज्ञान नहीं होता। ये दोनों अभिमत जैन दर्शन को स्वीकार्य नहीं हैं।

भवस्थ केवलज्ञान इस स्वीकार का सूत्र है कि मनुष्य सर्वज्ञ हो सकता है। सिद्ध केवलज्ञान इस स्वीकृति का सूचक *हैं कि मुक्त आत्मा में केवलज्ञान विद्यमान रहता* है। भवस्थ केवलज्ञान के दो भेद किये गये हैं–सयोगी भवस्थ केवलज्ञान और अयोगी भवस्थ केवलज्ञान। सिद्ध केवलज्ञान के दो भेद किये गये हैं–अनंतर सिद्ध केवलज्ञान और परंपरा सिद्ध केवलज्ञान। ये दो भेद काल सापेक्ष किये गये हैं। अनंतर सिद्ध केवलज्ञान के पंद्रह भेद किये गये हैं जो सिद्ध होने की पूर्व अवस्था के आधार पर हैं। यह व्याख्यान सूत्र जैन धर्म की विशुद्ध आध्यात्मिकता का प्रतिपादक है। इसमें लिंग, वेश आदि बाह्य परिस्थिति से मुक्त होकर केवल आत्मा के आंतरिक विकास की स्वीकृति है।

यह सच है कि सिद्ध होने के बाद सब जीव समान स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं, उनमें कोई उपाधिजनित भेद नहीं रहता। फिर भी पूर्व अवस्था की दृष्टि से उनके पंद्रह भेद नंदी सूत्र में निर्दिष्ट हैं। ❐

(शेष अगले अंक में)

'आकर्षण चमड़ी का नहीं होता, आकर्षण आभामंडल का होता है। जिस व्यक्ति का आभामंडल बड़ा सुखदायी होता है, उसके पास सब लोग बैठना चाहते हैं, बात करना चाहते हैं और उसका आशीर्वाद लेना चाहते हैं। जिसका आभामंडल अच्छा नहीं होता, उसके पास बैठने पर मन में बैचेनी-सी हो जाती है।

जिस व्यक्ति का दृष्टिकोण पदार्थपरक होता है, जिसे केवल पदार्थ ही अच्छे लगते हैं, खाना अच्छा लगता है, कपड़ा पहनना अच्छा लगता है, उसी में रुचि और आकर्षण रहता है, पदार्थ के सिवाय और कुछ भी दिखाई नहीं देता, वह व्यक्ति बहिरात्मा है।'

प्रार्थना के द्वारा साधना

ईश्वर से योग प्राप्ति के लिए प्रार्थना ही मनुष्य का प्रयास है। प्रार्थना महती आध्यात्मिक शक्ति है। यह उतना ही ठोस सत्य है जितना कि गुरुत्वाकर्षण का बल।

प्रार्थना मन को उन्नत बनाती है। यह मन को शुद्धता से भर देती है। यह ईश्वर की स्तुति से संबंधित है। यह मन को ईश्वर के साथ एकतान करती है। प्रार्थना उस धाम को पहुंचा सकती है जहां तर्क को जाने का साहस नहीं। प्रार्थना आपको आध्यात्मिक धाम को ले जा सकती है। यह भक्त को मृत्यु के भय से विमुक्त कर देती है। यह मनुष्य को ईश्वर के निकट लाती है तथा उसे अपने अमर सुखमय स्वरूप का साक्षात्कार कराती है।

प्रार्थना की शक्ति अवर्णनीय है। इसकी महिमा अमिट है। भक्तजन ही इसकी महिमा तथा उपयोगिता समझ पाते हैं। आदर, श्रद्धा, निष्काम-भाव तथा भक्ति के साथ प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना के विषय में तर्क न कीजिए। आप भ्रमित हो जाएंगे। आध्यात्मिक विषयों में तर्क की आवश्यकता नहीं। इस बुद्धि पर विश्वास न कीजिए। प्रार्थना की ज्योति से अपनी अविद्या-निशा को दूर कीजिए।

द्रौपदी ने हार्दिक प्रार्थना की। भगवान कृष्ण उसकी विपत्ति को दूर करने के लिए द्वारिका से दौड़ पड़े। गजेन्द्र ने करुण प्रार्थना की। भगवान हरि सुदर्शन चक्र लेकर उसकी रक्षा को दौड़ पड़े। प्रह्लाद की प्रार्थना ने उबलते तेल को ठंडा बना डाला। मीरा की प्रार्थना ने कांटों की सेज को फूलों में बदल डाला, सर्प को पुष्प-माला में परिणत कर दिया।

प्रार्थना करते समय आप असीम के साथ संबद्ध हो जाते हैं। आप हिरण्यगर्भ से शक्ति, बल तथा ज्योति प्राप्त करते हैं।

प्रार्थना के लिए अधिक विद्वत्ता अथवा वक्तृत्व-कला की आवश्यकता नहीं। ईश्वर तो आपके हृदय की मांग करता है। निरक्षर किंतु शुद्ध हृदय के व्यक्ति के विनय पूर्ण टूटे-फूटे अल्प शब्द भी ईश्वर के लिए पर्याप्त हैं।

डाक्टरों द्वारा जिस रोग को असाध्य बतलाया जाता है, प्रार्थना उसे भी चामत्कारिक ढंग से दूर कर देती है। इस प्रकार की बहुत-सी घटनाएं हुई हैं। प्रार्थना के द्वारा रोग का उपचार बड़ा ही आश्चर्यकर तथा रहस्यमय है।

जो नियमित प्रार्थना करता है उसने परम शांति एवं सुख के पथ को ग्रहण कर लिया है। जो प्रार्थना नहीं करता वह व्यर्थ ही जीता है।

प्रार्थना का महान प्रभाव है। मुझे इसके बहुत अनुभव हैं। यदि प्रार्थना आंतरिक है, यदि वह आपके हृदय के अंतस्तल से निःसृत होती है तो यह तत्क्षण ही ईश्वर के हृदय को द्रवित कर देती है।

सांसारिक उद्देश्यों अथवा विषयों के लिए प्रार्थना न कीजिए। उसकी करुणा के लिए प्रार्थना कीजिए। सदा प्रार्थना कीजिए–'हे प्रभो! मैं सदा आपकी याद बनाए रखूं। मेरा मन आपके चरण-कमल में लगा रहे। मेरी बुरी आदतों को दूर कीजिए।'

प्रार्थना शुद्ध-आध्यात्मिक प्रवाहों का निर्माण करती है तथा मन की शांति लाती है। यदि आप नियमित प्रार्थना करें तो शनैः-शनै आपका जीवन परिवर्तित हो जाएगा। प्रार्थना स्वाभाविक बन जानी चाहिए। यदि प्रार्थना आपका स्वभाव बन जाये तो आप उसके बिना जीवित नहीं रह सकते।

प्रार्थना पर्वतों को चलायमान कर सकती है। प्रार्थना चमत्कार कर सकती है। अपने हृदय के अंतरतम से एक बार तो प्रार्थना कीजिए–'हे प्रभो! मैं तेरा हूं। तेरा ही होकर रहूंगा। मुझ पर करुणा कर। मैं तेरा सेवक हूं। अपने हृदय में ऐसे भाव लाइए। प्रार्थना तुरत ही सुन ली जाती है। अपने दैनिक जीवन-संग्राम में प्रार्थना कीजिए तथा इसके प्रभाव का अनुभव कीजिए। आपमें प्रबल आस्तिक्य बुद्धि होनी चाहिए।

स्वार्थमयी कामनाओं को लेकर ईश्वर से प्रार्थना न कीजिए। कभी न कहिए–'हे प्रभो! हम धनी बन जायें। हमें संतति, पशु तथा संपत्ति दें। मेरे शत्रु विनष्ट हो जायें। मैं बहुत काल तक स्वर्ग-सुख का उपभोग करूं।' इस तरह कभी भी प्रार्थना न कीजिए। ईश्वर से व्यापार न कीजिए। ईश्वर आपकी आवश्यकताओं को जानता है। वह तो अंतर्यामी है। वह समस्त संसार को भोजन-वस्त्र प्रदान करता है। क्या वह कभी भी आपको भूल सकता है?

ईश्वर से विविध उपहारों को प्राप्त करने के लिए ईसाई जन तरह-तरह की प्रार्थना करते हैं। मुसलमान जन तथा अन्य धर्मावलंबी जन भी नित्यप्रति सूर्योदय, दोपहर, सूर्यास्त, सोने के पूर्व तथा भोजन से पूर्व प्रार्थना कर लिया करते हैं। प्रार्थना योग का प्रथम महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रारंभिक आध्यात्मिक साधना प्रार्थना ही है।

प्रार्थना के द्वारा मन तथा शरीर के ऊपर जो लाभकर प्रभाव होते हैं, उन्हें योगी अपनी अंतर्चक्षु से देख सकता है। निष्काम होकर सचाई के साथ ईश्वर की प्रार्थना कीजिए। आप भक्ति, शुद्धता, ज्योति तथा दिव्य ज्ञान प्राप्त करेंगे।

प्रातः सवेरे उठ जाइए। कुछ प्रार्थना कर लीजिए। किसी भी तरह आप प्रार्थना कर सकते हैं। शिशुवत सरल बनिए। अपने हृदय के प्रकोष्ठों को खोल दीजिए। धूर्तता तथा चालाकी से दूर रहिए। आप सब कुछ प्राप्त करेंगे। सच्चे भक्तों को भक्ति की महिमा मालूम है। नारद मुनि अब भी प्रार्थना करते हैं। नामदेव ने प्रार्थना की तथा विट्ठल मूर्ति से निकल कर भोजन करने के लिए बैठ गये। एकनाथ ने प्रार्थना की तथा भगवान हरि ने चतुर्भुज रूप में अपना दान दिया। मीरा ने प्रार्थना की. भगवान कृष्ण ने दास के समान उनकी सेवा की। सुदामा जी ने प्रार्थना की, भगवान कृष्ण उनके ऋण के भुगतान के लिए निम्न जाति के व्यक्ति बन गए। अब अधिक आप क्या चाहते हैं? आंतरिक प्रार्थना कीजिए। इसी क्षण से हार्दिक प्रार्थना कीजिए।

हर प्रातःकालीन निष्काम तथा सच्ची प्रार्थना से आप सभी अमरत्व को प्राप्त करेंगे। प्रार्थना आपके जीवन का अंग बन जाये। प्रार्थना के द्वारा आपके अंतर्चक्षु उन्मुक्त हों। ऐसी कामना है।

(संकलित)

विनोद बैद, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1
के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

VAB VENTURES
Leadership with Trust...
VAB Ventures Ltd.
60 B Chowringhee Road, Suite : 3/2/1, 3rd Floor
KOLKATA 700020, West Bengal, India
Tel. : (+91) 3322900112-114 | Fax : (+91) 3322900115
E-mail : arihantbaid@vabventures.in, www.vabventures.in
Sugar ◆ Pharmaceuticals ◆ Biotech ◆ Real Estate ◆ Financial Services ◆ Education ◆ Infotech

जैन भारती, अप्रैल, 2014 ■ प्रेषण दिनांक 28 मार्च, 2014
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2012-2014

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

के.बी.डी. फाउण्डेशन
बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन
बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन
बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779
नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।